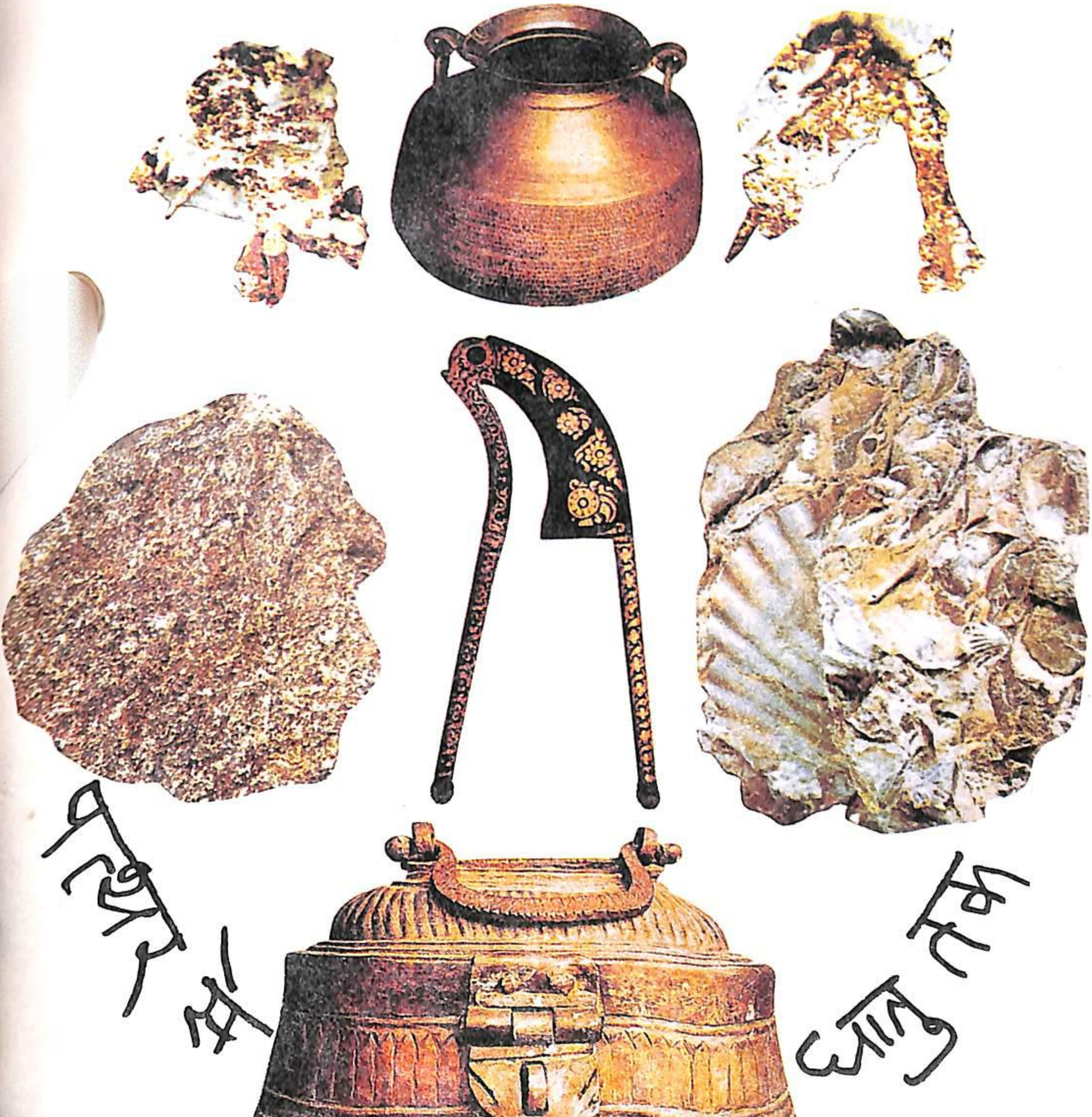
चकमक

मार्च, 1991

बाल विज्ञान पत्रिका

रु. 4.00



पत्थर से धातु तक



चकमक



आवरण परिचय

साथ में दिए चित्र में डले नंबरों के आधार पर देखो—

(1) एवं *(3)* ***तांबे के रवे :*** तांबा प्रकृति में इस तरह के रवों के रूप में मिलता है।

(2) तांबे का गगरा

(4) ***बेसाल्ट :*** दुनिया मे लगभग हर जगह मिलने वाला पत्थर, जिसके अनेकों उपयोग हैं।

(5) ***सरोता :*** लोहे से बना सरोता, जिस पर सोने की नक़ाशी की गई है।

(6) ***आयरन स्टोन :*** ऐसा पत्थर जिसमें काफ़ी मात्रा में लोहा रहता है।

(7) ***ज़ेवर का डिब्बा :*** तांबे से बना है।

इस अंक में...

विशेष

कविताएं

कहानी

हर बार की तरह

और यह भी

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष 6 अंक 9 मार्च, 1991
संपादक
विनोद रायना
सह-संपादक
राजेश उत्साही
कविता सुरेश
कला
जया विवेक
उत्पादन/वितरण
हिमांशु बिस्वास, कमलसिंह

चकमक का चंदा
एक प्रति: *चार रुपए*
छमाही : *बीस रुपए*
वार्षिक : *चालीस रुपए*
डाक खर्च मुफ़्त
चंदा, मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा रचना भेजने का पता
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462 016 (म.प्र.)
फोन : 563380

काग़ज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से।
सहयोग : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

'अख़्तर के अब्बा...?' : प्रतिक्रियाएं

वर्तमान समाज हर क्षेत्र में लड़का और लड़की के मध्य काफ़ी पक्षपात पूर्ण रवैया अपना रहा है। हमेशा लड़के को उच्च तथा लड़की को निम्न दृष्टि से देखा जाता है। लड़के ही अधिकतर इंजीनियर, डॉक्टर, प्रोफ़ेसर, वैज्ञानिक आदि बनते हैं क्योंकि उन्हें शुरू से ही वैसी शिक्षा तथा वातावरण दिया जाता है, और लड़कियां पिछड़ी ही रह जाती हैं। यदि उन्हें भी वैसे उचित अवसर देकर उनका मनोबल उत्साह एवं लगन को बढ़ाया जाए तो इसमें कोई शक नहीं कि वे लड़कों से पीछे न रहें। यदि हम अन्य देशों की बात करें तो यह बात पूर्णतः सत्य हो जाती है। ऐसा बिलकुल नहीं कि लड़कियों में आगे बढ़ने की क्षमता का अभाव है, आवश्यकता केवल उसको विकसित करने की है।

शहरी क्षेत्रों में तो स्त्री-शिक्षा पर काफी बल दिया जाता है, लेकिन गांवों की स्थिति तो इसके बिलकुल विपरीत है। ग्रामीण स्त्रियां अधिकांशतः अशिक्षित हैं। भारत जैसे विकासशील देश में स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। गांवों का विकास करना चाहिए। तभी गांवों में भी इसका प्रचार बढ़ेगा।

एक लड़के को पढ़ाना एक व्यक्ति को पढ़ाना है जबकि एक लड़की को पढ़ाना एक पूरे परिवार को पढ़ाना है। स्वस्थ तथा शिक्षित माताएं ही स्वस्थ एवं शिक्षित पीढ़ी बना सकती हैं।

दूसरी तरफ माता या पिता के नाम की समस्या है। किसी भी लड़के या लड़की का नाम लिखाने पर वहां उसके पिता का ही नाम लिखा जाता है। क्या उस बच्चे के विकास में केवल उसके पिता की ही प्रधानता है? कदापि नहीं।

आज का समाज पैतृक प्रधान समाज है। उसमें पिता के नाम की ही प्रमुखता है फिर भी ऐसा करना उचित नहीं है। बच्चे के निर्माण में माता-पिता दोनों का बराबर योगदान है फिर यह पक्षपात कैसा?

□ संतोष मिश्र, फिनंगी, भोजपुर

पाठक लिखते हैं

लड़के व लड़कियों में माता-पिता द्वारा जो भेदभाव रखा जाता है उसके पीछे भी कई कारण हैं। मैं सभी बातों में तो भेदभाव रखने की प्रक्रिया को अनुचित मानता हूं, परंतु कुछ-कुछ कार्यों में अगर भेदभाव रखा जाता है तो वह लड़की के जीवन में फ़ायदे में ही रहता है।

मान लो कोई लड़की इंजीनियरिंग उत्तीर्ण है। वह एक इंजीनियर है तो उसकी गृहस्थी ठीक प्रकार से नहीं चलेगी, क्योंकि रात-दिन वह अपने कार्य में इतनी व्यस्त रहेगी कि न तो अपने बच्चों पर ध्यान दे पाएगी न पति पर और इसी वजह से दांपत्य जीवन में एक दरार पड़ने लगेगी। हां अगर किसी प्रकार की मजबूरी है या परिवार के लोग चाहते हैं कि नौकरी करो तो ही वह सफल नौकरी कर सकेगी और अपने परिवार का सुखी जीवन निर्वाह कर पाएगी।

ख़ास तौर पर माता-पिता लड़की को इसलिए नहीं पढ़ाते क्योंकि वह पराया धन है। माता-पिता तकलीफ़ उठाकर उसे पढ़ाते-लिखाते हैं, नौकरी करवाते हैं और जब विवाह हो जाता है तब ससुराल वाले चाहें तो नौकरी करवाएं, न चाहें तो छुड़वा दें, तो माता-पिता को दुख होता है।

लड़का माता-पिता का धन होता है। माता-पिता के बुढ़ापे का सहारा होता है। अतः हर माता-पिता चाहते हैं कि मेरा पुत्र अच्छा पढ़े, अच्छी नौकरी करे ताकि सुखी रहे। साथ ही हमारी ज़िंदगी के अंतिम दिन सुखपूर्वक व्यतीत हों।

□ के.एस. पुरोहित, मुलथान, धार

पिछले चार माह में हर अंक में कोई न कोई लेख ज़रूर अच्छा लगा। दिसंबर 90 के अंक में प्रकाशित 'आकाश की छतरी में छेद' लेख बहुत ही पसंद आया। मेरा एक सुझाव है कि आप हर अंक में पर्यावरण प्रदूषण के बारे में लेख दिया करें। ताकि हम प्रदूषण के बारे में सजग हो सकें और उससे बचाव के उपाय करें।

□ कृष्णानंद शर्मा, कोटा, राजस्थान

चकमक का दिसंबर अंक हमारे स्कूल में आया। पढ़कर आनंद आया। चकमक के इसी अंक में मुख्य लेख 'आकाश की छतरी में छेद' पसंद आया। यदि हमें आकाश की छतरी में होने वाले छेद नहीं होने देना है तो हमें अधिक पेड़ पौधे लगाना चाहिए।

□ वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, कटनई, बिलासपुर

चकमक सचमुच बेजोड़ पत्रिका है। यह हमारे बाल मस्तिष्क को सभी उपयोगी वैज्ञानिक तथ्य उपलब्ध कराती है। 'आकाश की छतरी में छेद' पसंद आया। साथ ही साथ चित्रकथा, अपनी प्रयोगशाला, माथापच्ची रोचक लगते हैं।

□ समीर कुमार, बढ़ौना समस्तीपुर, बिहार

चकमक पत्रिका को पाते ही मेरा मन फूला नहीं समाता है। दिसंबर 1990 अंक में आकाश की छतरी में छेद, नजानू कवि बना, विशेष पसंद आई। दुनिया पक्षियों की में सारस की जानकारी मन को लुभा गई।

□ मृगेंद्र कुमार, छेदी टोला, पटना

नवंबर माह की चकमक में 'पृथ्वी के दो छोर' और दिसंबर माह के अंक में 'आकाश की छतरी में छेद' अत्यंत रोचक लगे। यदि चकमक को दुरूह विज्ञान का सरल प्रस्तुतीकरण भी कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

□ हरिप्रसाद सैनी फतेहपुर

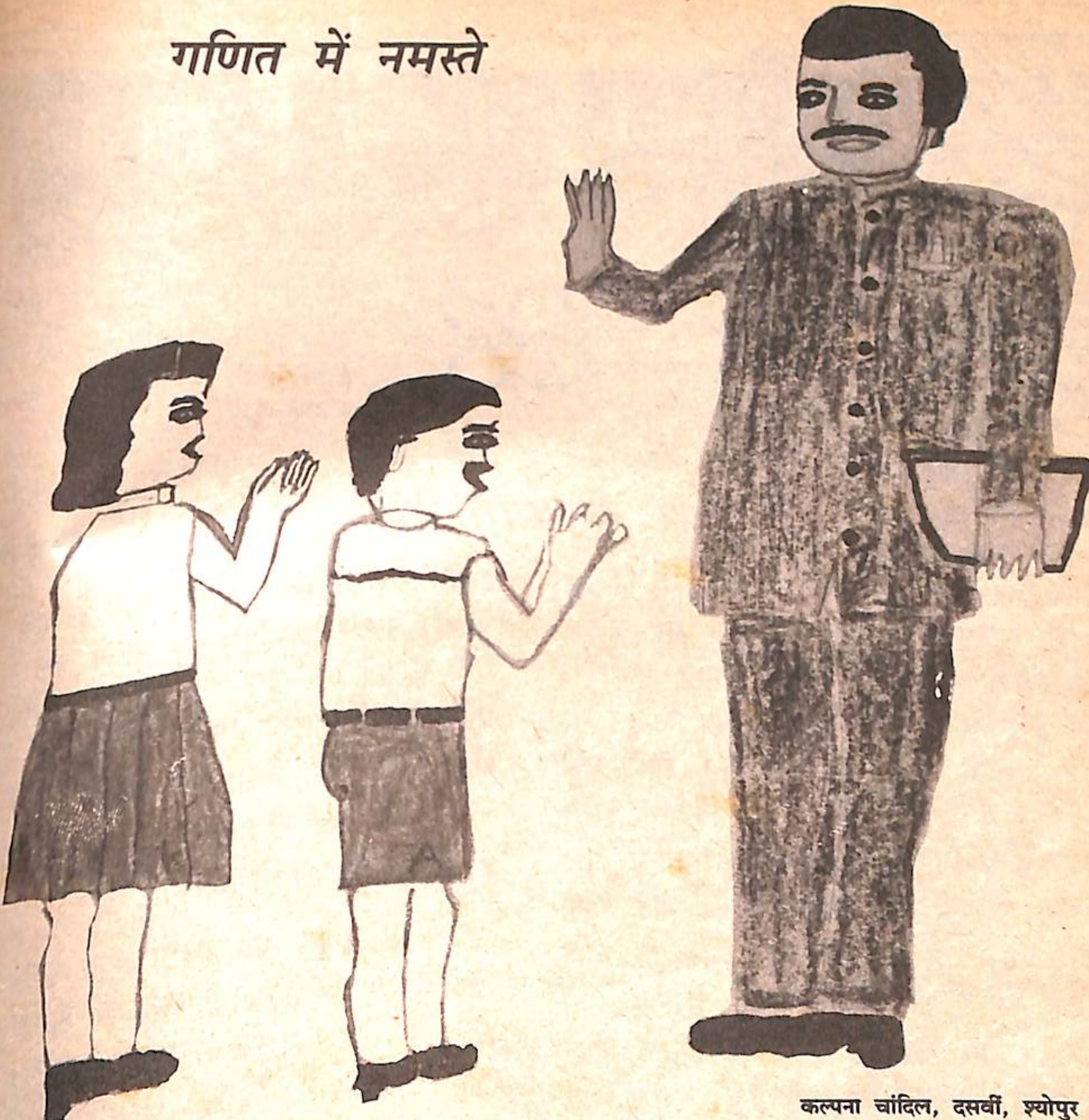
चकमक बहुत ही लोकप्रिय पत्रिका है इसे पढ़ने के लिए पड़ोस के लोग एवं मेरे शिक्षक मुझसे मांगा करते हैं और पढ़कर काफी सराहना भी करते हैं। दिसंबर के अंक में ओज़ोन छतरी में छेद के बारे में जानकारी अच्छी लगी। 'चकमक' ऐसी पत्रिका है जो बड़ों के लिए भी उपयोगी है।

□ गणेश सिंह पंजवार, सिवान

चकमक का जनवरी अंक मिला। बाहरी आवरण से ही इसकी ख़ूबसूरती झलक रही थी। नए वर्ष का कैलेंडर सुंदर था और ऊपर से कैलेंडर से संबंधित जानकारी ने इसकी सुंदरता में चार चांद लगा दिए।

□ संतोष कुमार, चमरहरा, वैशाली; तौहिद जौहर, रिकाबगंज, बिहार। राहुल, संजीव, इटावा। सुप्रिया दीक्षित, पाण्डोला, मुरैना।

गणित में नमस्ते



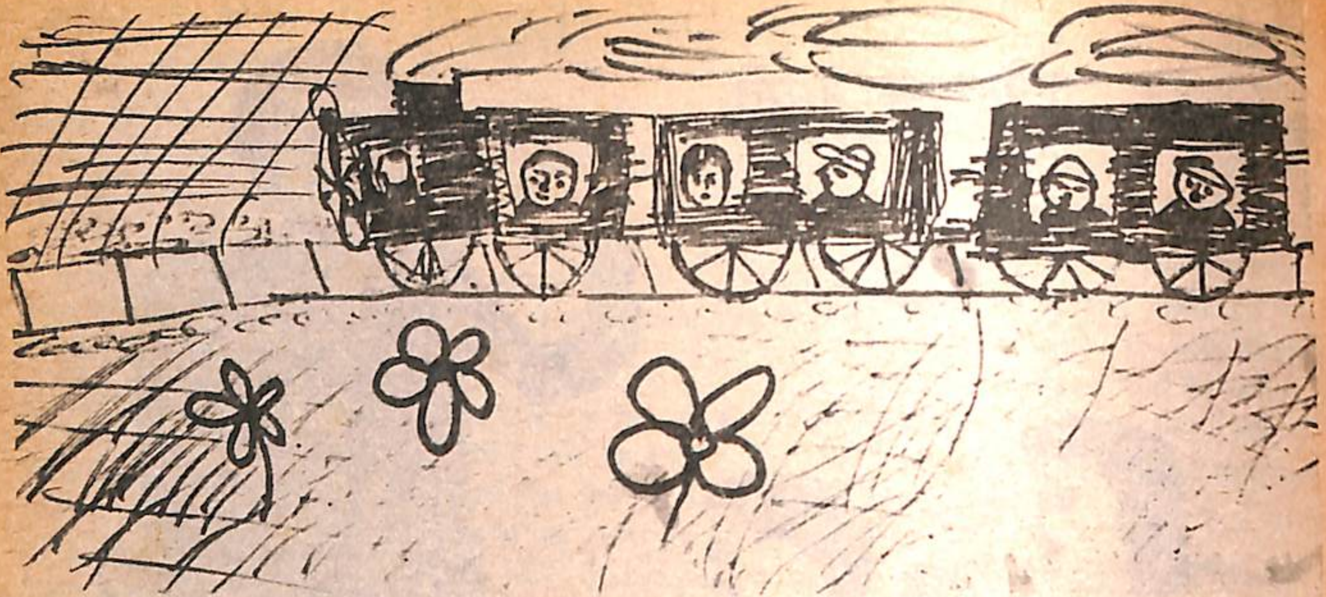
कल्पना चांदिल, दसवीं, श्योपुर कलां,

एक बार में स्कूल से घर जाने वाला था इसलिए मैंने सभी आचार्य एवं दीदी को उनकी भाषा में यानि हिन्दी के आचार्य को हिन्दी में 'नमस्ते' कहा। अंग्रेज़ी की दीदी को 'गुड डे' कहा तथा संस्कृत के आचार्य को 'नमो नमः' कहा, तो हमारे प्राधानाचार्य जी जो हमें गणित पढ़ाते हैं उन्होंने कहा कि, "अब मैं तुम्हें गणित में नमस्कार का उत्तर देता हूं।"

उन्होंने कहा, " ज़्यादा तीन-दो-पांच मत कर वरना दो चांटे मारूंगा तो यहां से नौ दो ग्यारह हो जाएगा।"

मुझे सभी भाषाओं का नमस्ते का उत्तर तो अच्छा लगा पर गणित की भाषा मुझे समझ नहीं आई। अगर गणित ऐसा है तो बहुत बुरा है।

☐ बृजेश काबरा, छटवीं, हरदा



संदीप शर्मा, धार,

घर से भागे हम

एक बार की बात है कि मैं घर से निकल भागा। मैं मुजफ़्फ़रपुर रेलवे स्टेशन पर जाकर कलकत्ता वाली गाड़ी का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया। रेलगाड़ी दूसरे दिन हावड़ा स्टेशन पर जाकर रुकी। मैं गाड़ी से उतर कर सीधे एक होटल में गया। वहां मैंने नाश्ता किया। हमसे होटल वाले का एक शीशे का गिलास फूट गया। मैंने होटल वाले को सौ का नोट दिया चूंकि मेरे पास खुदरा नहीं था। मैंने दो रुपए का नाश्ता किया था लेकिन उसने दो रुपए की जगह दस रुपए काट लिए। मैंने होटल वाले से पूछा कि "आपने दो रुपए की जगह दस रुपए क्यों काटे?"

उसने कहा, "दो रुपए का नाश्ता तीन रुपए का गिलास और पांच रुपए खुदरा देने का काटा है।"

इस तरह तो भारत के अच्छे-अच्छे शहरों में डकैती हो रही है।

मैं अपने फुफेरे भाई का पता लेकर गया था। जो गंजी मिल काशीपुर में काम करते हैं। मैं पहले-पहल कलकत्ता गया था। मिल का रास्ता पूछने पर कोई इधर, कोई उधर बतला देता था। लेकिन हमको एक सज्जन आदमी मिला। उन्होंने काशीपुर जाने वाली बस में हमको बैठा दिया। जब हम अपने फुफेरे भाई के पास पहुंचे तो वो हमको देखकर चकित हो गए और बोले "तुम यहां कैसे आए हो?"

मैंने कहा, "पिताजी से बिना कहे आया हूं क्योंकि वो हमको मारे-पीटे हैं।"

मेरे फुफेरे भाई हमको बहुत समझाए कि, 'तुम्हारी यह उम्र पढ़ने-लिखने की है, भागने की नहीं।'

मैं उनकी बातों से बहुत प्रभावित हुआ। वहां कुछ दिनों तक रहने के बाद उन्होंने मेहसी तक का टिकट और सौ रुपए देकर हमको भेज दिए। मैं मेहसी न आकर फिर मैं इधर-उधर घूमने लगा। कभी दस बजे खाना खाता तो बारह बजे। जिससे मेरा स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। तब मैं अपने घर परतापुर को चल दिया। मेरे माता-पिता हमको खोज रहे थे।

जब मैं घर पहुंचा तो वे देखकर बहुत खुश हुए।

□ राघव प्रसाद विद्यार्थी, परतापुर, बिहार

कंजूस ने पार्टी दी

मारे गांव में एक कंजूस की चक्की थी। हम ोग उसके यहां हर छः या सात दिनों में एक र चने की दाल पिसाने के लिए जाते थे।

जब कंजूस ने एक किराना की दुकान ली तो उसके दोस्तों ने पार्टी मांगी तो कंजूस कहा कि रविवार को आप लोग मेरी दुकान आना फिर अपन लोग पार्टी के बारे में चेंगे। दो दिन बाद रविवार आया तो सारे त कंजूस की दुकान पर पहुंचे और कहने कि भाई पार्टी के बारे में सोच लिया उसने नहीं। दोस्त सोचने लगे। एक ने कहा, टल से मिठाई मंगा ली जाए।''

दूसरे ने कहा, ''नहीं भाई मिठाई तो कल खाई थी। आज तो भजिए खाने की इच्छा और होटल में भजिए नहीं बनते। फिर क्या या जाए।''

कंजूस ने कहा, ''भाई मैं ऐसा करता हूं चक्की में से ग्राहक के डिब्बे में से बेसन आऊंगा। कढ़ाई तेरे घर से ले आना।'' फिर से कहा, ''भाई तुम खोंचा ले आना और बाकी सामान दुकान से निकाल लेंगे।''

सब मिलकर भजिए बनाने लगे। एक मित्र ने मिर्च कुछ ज़्यादा डाल दी थी। जब सब दोस्त भजिए खाने लगे तो सभी का मुंह जल गया। सभी पानी-पानी चिल्लाने लगे। फिर सबने कंजूस की दुकान पर जाकर इतना पानी पिया कि मटके का सारा पानी खत्म हो गया। जब वो सब पानी पी रहे थे तब कंजूस के पिताजी वहां पानी पीने आ गए। उन्होंने देखा कि सब एक साथ बैठ कर भजिए खा रहे हैं। उन्होंने कंजूस को दरवाजे के पास से झाड़ू निकाल कर बहुत पीटा।

शाम को मैं चक्की पर आटा लेने के लिए गया तो मैंने देखा कि डिब्बे में आटा कम कैसे है? पिछली बार भी कम था। अपने घर जाकर मैंने अपने पिताजी को सारी बात बता दी।

मेरे पिताजी गुस्से में आकर कंजूस के पिताजी और कंजूस से खूब लड़े।

☐ कमलसिंह पाटीदार, नवमीं, नेवरी, देवास



गाय ने खाया काग़ज़



हेमलता कुंजुर, सातवीं

पिछली छुट्टियों में मैं अपने मामा के गांव गया था। मेरे मामा के घर के पिछवाड़े में एक कमरा है, जिसमें एक बड़ी सी खिड़की है। उस खिड़की से दूर-दूर तक फैले खेत और बागान हैं जो स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

एक दिन में उस खिड़की के किनारे बैठ कर पेंटिंग कर रहा था। मैं उन खेतों-बागानों के दृश्यों को अपनी पेंटिंग-पुस्तिका में उतार रहा था। सहसा मैंने देखा कि एक गाय उस खेत में चर रही थी। तभी मेरे दिमाग़ में एक विचार कौंधा। मैंने काग़ज़ की छोटी-छोटी पत्तियां बनाईं। उन्हें काट कर स्केच पेन से रंग डाला। इस तरह ढेर सारी पत्तियों को लेकर मैं गाय के पास पहुंचा। गाय अभी घास चर रही थी। जब गाय की नज़र काग़ज़ की पत्तियों पर पड़ी तो गाय उन सारी पत्तियों को खा गई।

मैं यह सोच कर बहुत खुश हुआ कि मैंने गाय को मूर्ख बनाया। जब मैंने यह बात अपने दोस्तों को बताई तो वे हंसते-हंसते लोट-पोट हो गए। मैंने हंसने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि गाय काग़ज़ भी खाती है।

☐ सौमित्र चटर्जी, आठवीं, पटना

पहेलियां

एक फूल है काले रंग का
सिर पर सदा सुहाए!
वर्षा-धूप में खिल जाता
छाया में मुरझाए!

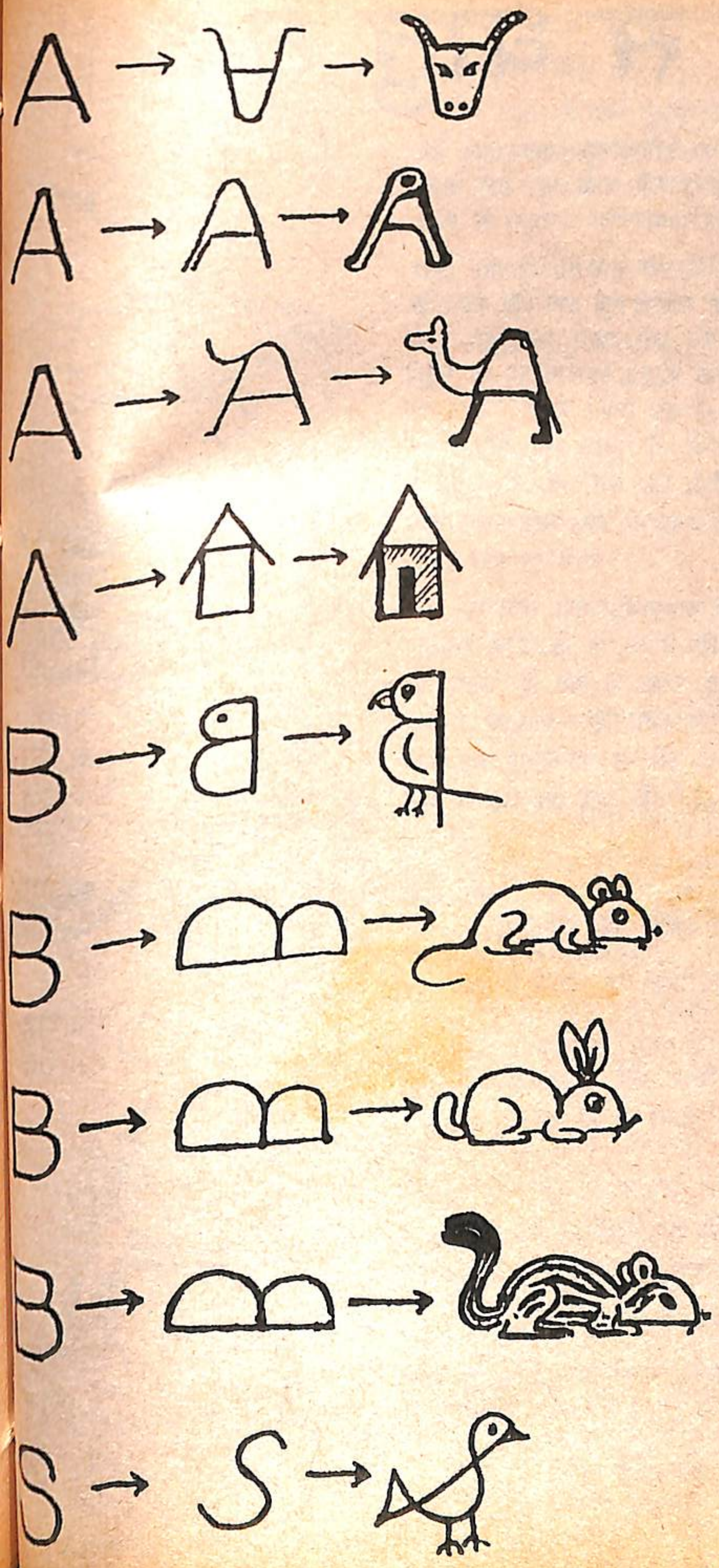
●

खरीदने पर काला
पकने पर लाल!
फेंकने पर सफ़ेद
कैसा है कमाल!

●

खींचे पानी निकले धुंआ
सच बताओ कैसा कुंआ!

☐ पंकज तिवारी, सातवीं,
पीपल्या स्टेशन, मंदसौर



पिछले अंकों में तुमने देवनागरी लिपि के कुछ अक्षरों में तरह-तरह की आकृतियां ढूंढी थीं। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए अपन अंग्रेज़ी वर्णमाला के कुछ अक्षरों में आकृतियां ढूंढते हैं। देखो कुछ उदाहरण..!

☐ कल्पना : विष्णु चिंचालकर
चित्र : अविनाश देशपांडे

पत्थर से धातु तक

तुम गुनगुन को जानते हो? अरे वही जो हमेशा गुनगुनाती रहती है। कभी यह गीत तो कभी वो कविता! हमने उसे कभी चुप नहीं देखा, जब भी देखा बस कुछ न कुछ गुनगुनाते पाया।

गुनगुन गुनगुनाते हुए जा रही थी कि उसे रास्ते में पड़े एक पत्थर की ज़ोरदार ठोकर लगी। गुनगुन 'ऊई मां' कहती हुई वहीं बैठ गई। पैर की एक उंगली बुरी तरह छिल गई थी। उसे पत्थर पर बुहत गुस्सा आया। उसने पत्थर उठाकर एक तरफ फेंक दिया। लंगड़ाते हुए घर पहुंची तो मां ने पूछा, "क्या हुआ?" गुनगुन भुनभुना उठी। बोली, "होना क्या था, पत्थर की ठोकर लग गई। ये पत्थर भी बेकार की चीज़ है, न काम आए न धाम!" मां ने कहा, "ऐसा मत कह, हर चीज़ कुछ न कुछ काम की होती है।" गुनगुन ने मुंह बनाया, "ऊंह, भला पत्थर किस काम का।" बात आई गई हो गई।

शाम को गुनगुन अपनी सहेलियों के साथ लंगड़ी खेल रही थी। लंगड़ी खेलते-खेलते उसे ध्यान आया कि घिप्पा भी तो पत्थर का है। सितौलिया खेलते हैं तो उसमें भी पिद्दू पत्थर के होते हैं। उसके घर में जो चक्की है, वह भी पत्थर की है। मां जिस सिल-बट्टे पर मसाला पीसती है, वह भी पत्थर का है। फिर तो उसे यह सोचने में मज़ा आने लगा कि पत्थर कहां-कहां उपयोग होता है। और जब तक वह सो नहीं गई, सोचती ही रही!

सोते हुए गुनगुन ने एक सपना देखा, मज़ेदार सपना। अब थोड़ी देर के लिए तुम्हें मानना पड़ेगा कि यह सपना हमने भी देखा।

गुनगुन ने जिस पत्थर को उठाकर फेंका था, सपने में वह उसी से बातें कर रही थी।

पत्थर बोला, "तुमने मुझे फेंक दिया, कोई बात नहीं। पर एक ज़माना था जब सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शायद मैं ही था।"

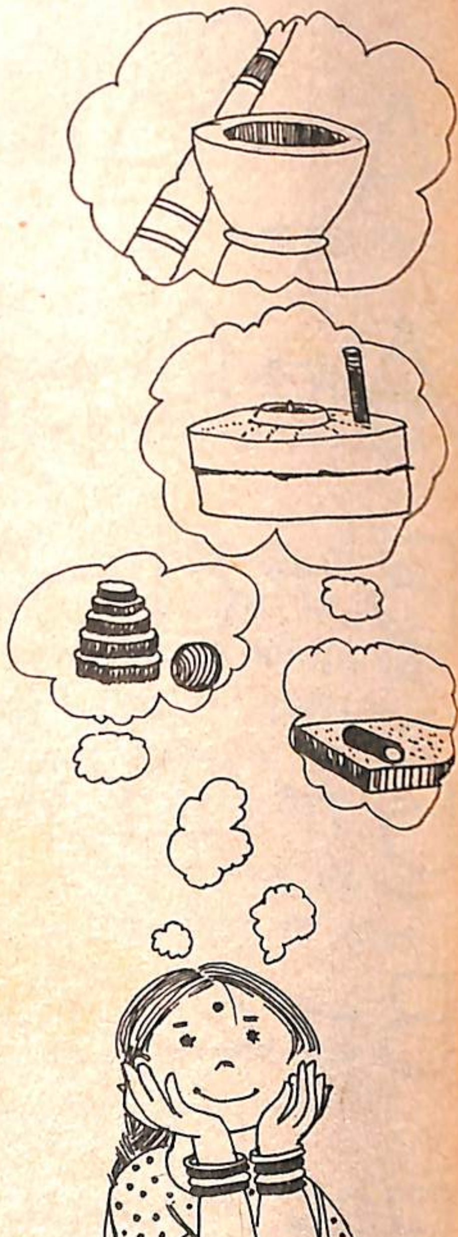
"कैसे?"

"तुम जानती हो कि मानव ने सबसे पहले ऐसी चीज़ें बनाई जिनकी मदद से वह जानवरों का शिकार करके अपना पेट भर सके या जंगली पेड़-पौधों की जड़ खोदकर, फल तोड़कर खा सके।"

"ये कौन-सा मुश्किल काम है। बंदूक, भाला या कुदाली, कुल्हाड़ी से हो सकता है।"

"पर गुनगुन मैडम, तब ये चीज़ें बनी कहां थीं?"

"फिर!"



रेखांकन : विवेक

"मैं वही तो कह रहा था। मानव को इन दो कामों के लिए हथियार और औज़ार चाहिए थे। उसने पत्थर और लकड़ी से ये चीज़ें बनाई।"

"अरे वाह, कैसे?"



"पत्थर के एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर इस तरह चोट की जाती थी कि उसकी चिप्पियां निकलती जाएं और पत्थर का टुकड़ा नुकीला होता जाए। इस तरह नुकीले बनाए गए पत्थर के टुकड़ों को लकड़ी के हत्थों में फंसाकर हथियार की तरह काम में लाया जाता था।"

"पर आजकल तो हथियार और औज़ार लोहे जैसी धातुओं के बने होते हैं। क्या तब मानव धातु के बारे में नहीं जानता था?"

पत्थर कुछ बोले उसके पहले ही आले में रखा तांबे का घोड़ा बोल उठा, "हां नहीं जानता था।"



"ओ घोड़े के बच्चे, तू बीच में कहां से टपक पड़ा, पहले मुझे अपनी बात पूरी करने दे।" पत्थर चिल्लाया।

"अच्छा-अच्छा लड़ो मत, अपनी बात जल्दी पूरी करो।" गुनगुन ने बीच-बचाव किया।

"बस, अब मुझे यही कहना है कि मानव द्वारा बनाए पत्थरों के औज़ार कहीं-कहीं खुदाई के दौरान मिलते हैं।" पत्थर बोला।



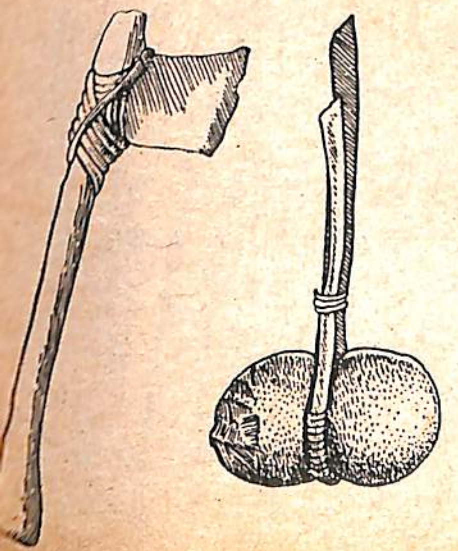
"मुझे एक बात पूछनी है! मानव ने पत्थर का ही उपयोग क्यों किया?" गुनगुन बोली।

थोड़ी देर चुप्पी छाई रही।

"अरे क्या हुआ कोई बोलता क्यों नहीं?"

"बस मुझे कुछ नहीं बोलना अब अपने इस लाड़ले घोड़े से ही पूछो।" पत्थर बड़बड़ाया।

घोड़ा वास्तव में गुनगुन का लाड़ला था। उसके पिताजी किसी प्रदर्शनी से खरीदकर लाए थे। गुनगुन घोड़े से बोली, "बोल मेरे घोड़े तू ही कुछ बोल।"



घोड़ा शायद तैयार ही बैठा था। बोला, "वास्तव में उस समय मानव को यह पता ही नहीं था कि धातु जैसी कोई चीज़ होती है। फिर धातु हर जगह मिलती भी नहीं है। जबकि लगभग सभी जगहों पर किसी न किसी तरह का पत्थर आसानी से मिल जाता है। और लकड़ी तो मिल ही जाती है।"

"यानी हम यह भी कह सकते हैं कि अपने आसपास और आसानी से मिलने वाली चीज़ों का इस्तेमाल मानव ने किया।" गुनगुन बोली!

"बिलकुल ठीक! और चूंकि शुरू में पत्थरों का इस्तेमाल हुआ, इसीलिए वह समय **पाषाण युग** कहलाया।" घोड़े जी ने अपनी अक़्ल दौड़ाई।

गुनगुन सपना देख रही थी कि उसकी बिल्ली किसी चूहे के पीछे भागी। चूहे महाशय आले में रखे घोड़े पर ही जा बैठे। बिल्ली ने छलांग लगाई तो घोड़ा और बिल्ली नीचे आ गिरे। आवाज़ से गुनगुन की नींद टूट गई और सपना गायब हो गया। गुनगुन ने बहुत कोशिश की कि सपना फिर से आ जाए। पर सपना फिर आता है क्या?

फिर गुनगुन रात भर सो नहीं सकी। वह सपने और उसमें सुनी बातों के बारे में ही सोचती रही। उसके दिमाग में सवाल उठ रहे थे कि धातु का उपयोग कब शुरू हुआ होगा, कैसे हुआ होगा? उसने तय किया कि सुबह उठकर 'लड़ाकू' भैया से पूछेगी।

गुनगुन का एक भाई था। जो उससे बहुत लड़ता था। बात-बात में दोनों के बीच कट्टी हो जाती, और थोड़ी ही देर बाद दोस्ती! गुनगुन उसे 'लड़ाकू भैया' कहती थी।

सुबह उठकर गुनगुन ने लड़ाकू भैया को सपने की बात बताई। 'लड़ाकू' को सपना सुनकर मज़ा आया। उसने गुनगुन से कहा, "जो तुम जानना चाहती हो, वो मुझे भी नहीं मालूम।"

दोनों थोड़ी देर सोचते रहे। फिर लड़ाकू बोला, "अपन पुस्तकालय में चलते हैं, शायद वहां कोई किताब मिल जाए।"

उनके घर के पास छोटा-सा पुस्तकालय था। पुस्तकालय चलाने वाले को बच्चे पढ़ाकू चाचा कहते थे। क्योंकि वे हमेशा कोई न कोई किताब पढ़ते ही रहते थे। है न मज़ेदार, 'लड़ाकू भैया' के 'पढ़ाकू चाचा'!

बस दोनों ने जाकर 'पढ़ाकू चाचा' को सपने की बात बताई। पढ़ाकू चाचा अपने मोटे-मोटे शीशे वाली ऐनक में से देखते हुए मुस्कराए। फिर उन्होंने अलमारी में से एक पुरानी सी किताब निकालकर दी। किताब का नाम तो हमें भी नहीं मालूम, क्योंकि उसका ऊपर का पन्ना फट चुका था।

गुनगुन और लड़ाकू जो पढ़ रहे थे वो शायद तुम भी पढ़ना चाहोगे, तो पढ़ो। किताब में लिखा था;



खोज जारी रही

मानव हज़ारों साल तक पत्थर, लकड़ी और हड्डी के औजार तथा अन्य चीज़ें बनाता रहा। वह इन्हें बनाने में निपुण भी हो गया। तब कहीं जाकर उसने धातु से चीज़ें बनाना शुरू कीं।

धातुओं में भी सबसे पहले मानव ने तांबे का इस्तेमाल किया।

तांबे का खनिज पत्थर बहुत सुंदर हरे-नीले रंगों में प्रकृति में मिलता है। रंग-बिरंगा होने के कारण सहज ही इसकी ओर ध्यान चला जाता है। तांबे के खनिज से शुद्ध तांबा निकालने के लिए खनिज को आग में गर्म किया जाता है।

प्राचीन समय में कभी कोई खनिज पत्थर आग में गिर गया होगा

और तांबा पिघलकर उससे अलग हो गया होगा। आमतौर पर साधारण पत्थरों के साथ ऐसा नहीं होता। इस घटना की ओर प्राचीन मानव का ध्यान गया होगा और इस तरह धातु से उसका पहला परिचय हुआ होगा। इसी तरह प्राचीन मानव ने यह भी देखा होगा कि धातु में एक ख़ास बात है जो कि साधारण पत्थर में नहीं होती। गर्म करने पर धातु पिघलती है और लचीली हो जाती है। और अब तो हम यह भी जानते हैं कि पिघली हुई धातु को यदि अलग-अलग आकार के सांचों में डालें तो पिघली धातु उन सांचों का आकार ले लेती है। ठंडी होने पर धातु फिर से ठोस हो जाती है। और अपना नया आकार बनाए रखती है!

तांबे की एक विशेषता यह भी है कि यह कहीं-कहीं शुद्ध रूप में मिल जाती है। बाद में मानव ने यह भी जाना कि तांबे के साथ थोड़ी मात्रा में सीसा या टिन या आर्सेनिक मिला देने से जो नई धातु बनती है वह ज़्यादा आसानी से सांचों में बहकर **'चाहा गया'** आकार ले लेती है। यह नई धातु थी **'कांसा'**।

धातु के परिचय से कई ऐसीं चीज़ें (अलग-अलग आकार की) बनाना संभव हुआ जो पत्थर से नहीं बन सकती थीं।



तांबे की कुल्हाड़ी और ढालने का एक पुराना सांचा।

कुछ नया तो कुछ पुराना

धातु की इतनी विशेषताओं के बावजूद कांसे और तांबे की चीज़ों का उपयोग करने वाले मानव ने लकड़ी, हड्डी और पत्थर की चीज़ें बनाना बंद नहीं किया—चाहे हड़प्पा संस्कृति के लोग हों, या उसके बाद की संस्कृतियों के लोग। जिस समय तांबे का उपयोग किया जाता था, उसे **ताम्रयुग** और जिस समय कांसे का उपयोग किया जाता था, उसे **कांस्ययुग** के नाम से जाना जाता है।

भला ताम्रयुग और कांस्ययुग के लोग पाषाणयुग में बनने वाली लकड़ी, हड्डी और ख़ासकर पत्थर की चीज़ें क्यों बनाते रहे?

गुनगुन और लड़ाकू ने किताब बंद की और खुद भी सोचने लगे।

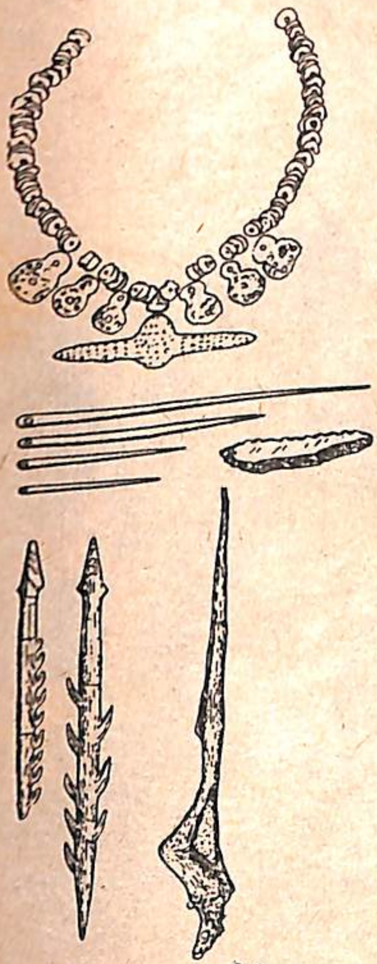
गुनगुन बोली, "लड़ाकू भैया शायद इसलिए कि पत्थर, तांबे और कांसे से ज़्यादा मज़बूत होता है।"

"यह तुम कैसे कह सकती हो!"

"देखो धातु तो आग में पिघल जाती है, पर पत्थर तो नहीं पिघलता।" गुनगुन बोली।

"हूं, यह बात तो है!"

"शायद इसलिए भी कि तांबा पृथ्वी पर बहुत कम जगहों पर मिलता है। मैंने अपने कोर्स की किताब में पढ़ा है कि तांबा पूर्वी तुर्की, साइनाई प्रायद्वीप और भारत में अरावली पहाड़ियों में व बिहार के छोटा नागपुर क्षेत्र में मिलता है।" लड़ाकू बोला।



हड्डी से बना हार, सुईयां तथा औजार।

"अच्छा ज़रा किताब में तो देखो क्या कारण बताया है?"

"किताब में लिखा है कि, अन्य बातों के अलावा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि तांबे या कांसे के औज़ारों की धार, पत्थर के मुकाबले बहुत अधिक तेज़ नहीं थी।" लड़ाकू शायद पहले ही पढ़ चुका था।

गुनगुन बोली, "भैया अब किताब में आगे क्या लिखा है, देखो तो।"

लड़ाकू ने किताब खोली, पन्ना पलटा तो पाया कि आगे के पन्ने फटे हुए हैं। और जो पन्ना सामने था उसमें तो कुछ और ही कहानी है।

गुनगुन बोली, "चलो पढ़ाकू चाचा से पूछते हैं। उन्होंने तो शायद आगे की कहानी पढ़ी ही होगी।"

उन्होंने डरते-डरते पढ़ाकू चाचा को बताया कि किताब में आगे के पन्ने नहीं हैं, किसी ने फाड़ लिए। पढ़ाकू चाचा ने सुना तो बड़बड़ाए, "शैतानों के मारे नाक में दम है, चलो लाओ इधर।"

गुनगुन और लड़ाकू ने किताब वापस कर दी और वहीं खड़े रहे। चाचा ने उन्हें खड़े देखकर पूछा, "अब क्या है?" पर इस बार उनका स्वर थोड़ा नरम था।

लड़ाकू ने हिम्मत की, "चाचा, इस किताब में जो पन्ने नहीं हैं उनमें क्या लिखा था यह तो आपने पढ़ा ही होगा।"

चाचा ने किताब उठाई, पन्ने पलटे, कुछ पढ़ते रहे और फिर बोले, "हां, पढ़ा है।"

"तो हमें भी बताओ।" दोनों एक साथ बोल उठे!

पढ़ाकू चाचा उठे। अलमारी से एक और किताब निकालकर लाए और बोले, "तुम इसमें से पढ़ लो। मुझे अभी समय नहीं है।"

गुनगुन और लड़ाकू किताब लेकर फिर बैठ गए। किताब लोहधातु के बारे में थी! जो उन्होंने पढ़ा, तुम भी पढ़ो;



लोहा

लोहे की बात ही अलग है। ताम्रयुग और कांस्ययुग के बाद लोहे का ज़माना आया। खनिज लोहा पृथ्वी पर और खासकर भारत में लगभग हर जगह काफ़ी आसानी से पाया जाता है—इसीलिए तांबे से सस्ता है।

पत्थर, तांबे, कांसे की तुलना में लोहा कहीं ज़्यादा मज़बूत और कठोर भी होता है। इस विशेषता के कारण इससे बनी चीज़ों पर तेज़धार अधिक समय तक रह सकती है। लोहे को अलग-अलग आकारों में ढालना कहीं अधिक आसान है।

जब लोहे का इस्तेमाल होने लगा, तब जाकर कहीं पत्थर का उपयोग कम हुआ। पर लोहे का उपयोग तांबे के बाद ही किया गया।

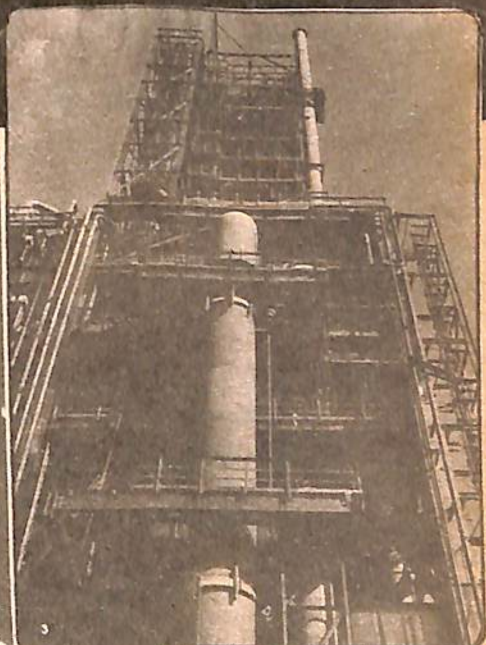


म.प्र. की अगरिया जनजाति के लोग बहुत ही साधारण भट्टियों में लोह खनिज को पिघला कर, उससे लोहा प्राप्त करते हैं। चित्र में ऐसी ही एक भट्टी दिखाई गई है। भट्टी मिट्टी से बनी होती है। खनिज पत्थर को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़कर साल लकड़ी के कोयले के साथ भट्टी में गरम किया जाता है। धौंकनियों को पैर से चलाकर, उनमें लगी बांस की नलियों से भट्टी में हवा की जाती है।



गभग एक-डेढ़ घंटे बाद खनिज लाल रंग
द्रव के रूप में पिघलना आरंभ हो जाता है।
धातु मैल (अशुद्धियां) निकलने के लिए
को खोल दिया जाता है। जब धातु मैल
बंद हो जाता है तो समझा जाता है कि
नने की प्रक्रिया पूरी हो चुकी है।
सौजन्य : राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भोपाल)





... और यह है एक आधुनिक लोह कारखाने का बाहरी दृश्य (ऊपर)। (बाईं ओर) कारखाने में बड़ी-बड़ी भट्टियों में पिघलता लोहा!

भारत में अब से लगभग 3000 साल पहले लोहे की चीज़ें बननी शुरू हुईं।

इसका कारण यह हो सकता है कि आमतौर पर लोहा शुद्ध धातु के रूप में नहीं मिलता, जबकि तांबा मिल जाता है।

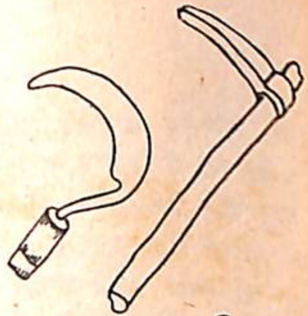
लोहे को गलाने के लिए भट्टी में बहुत अधिक ताप पैदा करना होता है और भट्टी में लगातार पर्याप्त मात्रा में हवा पहुंचाने के लिए विशेष धौंकनी की व्यवस्था भी करनी पड़ती है। भट्टी के लिए भी ख़ास क़िस्म का काठ कोयला चाहिए होता है। तभी भट्टी ठीक से जलती है। और लोहा पिघलता है।



तांबे को तो हथौड़ों से पीट-पीट कर भी आकार दिया जा सकता है। पर ठंडे लोहे को यूं पीट-पीट कर आकार नहीं दिया जा सकता था।

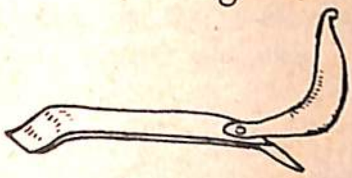
गुनगुन बोली, "भैया याद है. पिछले साल 'लोहेपीटे' आए थे बैलगाड़ियों में।"

"हां, याद है।" लड़ाकू बोला!



"उनके पास भी तो भट्टी थी। उसमें वे लोहे को गर्म करते और फिर हथौड़ों से पीट-पीट कर मनचाही चीज़ें बनाते थे।" गुनगुन बोली!

यानी लोहे का उपयोग करने के लिए जटिल तकनीकी समस्याओं को हल करने की ज़रूरत थी। पर एक बार जब लोहे के उपयोग की विधि विकसित हो गई, तब लोहे की चीज़ों का समाज में बहुत महत्त्व हो गया। लोहे का काम करने वाले विशेष कारीगर होने लगे।



लड़ाकू बोला, "गुनगुन अब बहुत हुआ। चलो घर चलते हैं।"

गुनगुन बोली, "ठीक है।"

किताब जमा करके दोनों घर आ गए। लड़ाकू तो रास्ते भर



(रेखांकन सौजन्य : राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भोपाल.)

उछलकूद करता रहा। पर गुनगुन इन सब बातों के बारे में ही सोचती रही।

घर पहुंचे तो पिताजी ने पूछा, "कहां गए थे, दोनों के दोनों सुबह-सुबह।" उन्हें ताज्जुब यह भी हो रहा था कि हमेशा लड़ने वाले ये दोनों आज एक साथ कैसे हैं।

गुनगुन ने सपने से लेकर पुस्तकालय तक का सारा किस्सा बयान कर दिया। पिताजी ने सारी बातें ध्यान से सुनीं और बोले, "तुम लोगों ने इतना कुछ पढ़ ही लिया, अब अपन शाम को इसी संबंध में कुछ और बातचीत करेंगे।"

पिता जी तैयार होकर अपने काम पर चले गए और गुनगुन-लड़ाकू स्कूल!

गुनगुन का मन स्कूल में लग नहीं रहा था। उसकी सहेलियों को आश्चर्य हो रहा था कि गुनगुन आज गुनगुना क्यों नहीं रही है। वास्तव में गुनगुन शाम होने का इंतज़ार कर रही थी। कब शाम हो और पिता जी से बातें करें।

खैर शाम तो होनी ही थी। गुनगुन ने जल्दी-जल्दी खाना खाया और पिता जी का इंतज़ार करने लगी। लड़ाकू खेलने गया था। पर थोड़ी ही देर में वह भी आ गया। पिताजी ने गुनगुन को इंतज़ार करते देखा तो मुस्कराए। उनके हाथ में एक किताब भी थी।

"तो गुनगुन शुरू करें।" पिता जी ने पूछा, "भैया कहां है?"

"हां, पापा शुरू करो। भैया भी आ रहा है।"

"अच्छा तुम लोगों ने इस बात का कुछ अंदाज़ लगाया कि धातुओं के उपयोग से लोगों के रहन-सहन पर किस तरह का असर पड़ा होगा?"

गुनगुन और लड़ाकू सोच में पड़ गए। पिताजी बोले, "अच्छा देखो मैं ही बताता हूं।"

"यह तो तुमने देखा कि तांबा पृथ्वी पर बहुत कम जगहों पर मिलता है। जब तांबे के औज़ार और चीज़ें बनने लगीं तो उसके लिए तांबे की ज़रूरत वहां पर भी पड़ी, जहां तांबा नहीं मिलता था।"

"तो जहां मिलता था, वहां से लाते होंगे।" लड़ाकू बोला,।"



"सही है। शायद शुरू में दूर-दूर तक व्यापार और लेन-देन का सिलसिला धातुओं जैसी चीज़ों के लिए ही शुरू हुआ था।

धातुओं के उपयोग का एक और असर यह रहा कि धातु का काम करने वाले विशेष कारीगर होने लगे। पत्थर के औज़ार तो सब लोग बना लेते थे। लेकिन धातु के औज़ार बनाने के लिए खास जानकारी, अनुभव और हुनर की ज़रूरत थी—और समय की भी। जो लोग यह काम करने लगे वे फिर शिकार, खेती, पशुपालन जैसे भोजन जुटाने वाले कामों में नहीं लग सकते थे। ये लोग अपने बनाए धातु के औज़ारों के बदले में भोजन सामग्री लिया करते थे।"

"यानी एक चीज़ में बदलाव आने से हमारे जन-जीवन में कितनी और चीज़ें बदल जाती हैं।" गुनगुन बोली।

"जब लोहे का उपयोग शुरू हुआ होगा तो उससे भी असर पड़ा होगा।" लड़ाकू बोला।

"बिलकुल पड़ा। जब लोहे की कुल्हाड़ियां बनीं, तो घने जंगल काटे जा सके—जिससे खेती के लिए ज़मीन मिली। भारत में गंगा-यमुना के मैदान के घने जंगल साफ़ करना और वहां खेती फैलाना शायद लोहे की कुल्हाड़ियों की मदद से ही संभव हुआ। जिन जगहों की मिट्टी कठोर थी, वहां लकड़ी के हल से ज़मीन जोतना संभव नहीं था। जब लोहे के हल बने तब ऐसी ज़मीन भी जोती जा सकी।"

"और लोहे के हथियार बनने से शायद उस समय युद्ध में उस सेना का पलड़ा भारी रहता होगा, जिसके पास लोहे के मज़बूत और अच्छे हथियार होते होंगे।" लड़ाकू बोल उठा।

"हां, वास्तव में ऐसा ही था। सच तो यह है कि पत्थर, लकड़ी, तांबा, लोहा—कोई भी चीज़ कितनी भी अच्छी क्यों न हो उसे मानव की ज़रूरत, सूझबूझ और कोशिश ही उपयोगी बनाती है। और एक बार मानव किसी चीज़ को उपयोगी बना ले, तो उसका असर दूर-दूर तक हो सकता है।"

"क्या असर हमेशा अच्छा ही होता है?" गुनगुन ने पूछ ही लिया।

"असर अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। जैसे गौतमबुद्ध के समय के आसपास जब गंगा के मैदान में लोहे की कुल्हाड़ी और हल से खेती फैलाई गई—तो उन जंगलों में रहने वाले आदिवासियों को खदेड़ दिया गया। उधर लोहे के औज़ारों को बनवाने या मंगवाने में जो खर्चा बढ़ा तो राजाओं ने अपनी खेती-किसानी करने वाली प्रजा से लगान वसूलना शुरू कर दिया। वास्तव में हर सिक्के के दो पहलू होते हैं—चित और पट। इसी तरह हर नई खोज के भी दो पहलू होते हैं—अच्छा व बुरा। सवाल यही है कि किन लोगों का किस पहलू से सामना होता है।"

लड़ाकू उंघने लगा था। पिताजी बोले, "चलो आज इतना ही काफ़ी है।"

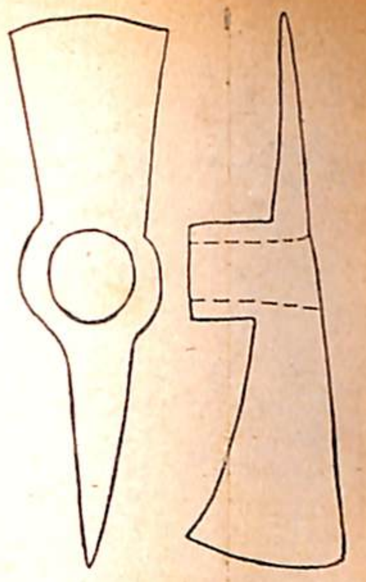
गुनगुन को ध्यान आया कि पिता जी एक किताब भी साथ लाए थे, "पापा किताब में क्या है?"

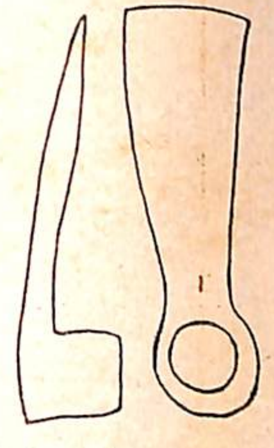
"अरे हां, किताब के बारे में तो मैं भूल ही गया। किताब में उन औज़ारों तथा चीज़ों के चित्र हैं जो अलग-अलग समय में बनाए जाते थे। लो अपने पास रख लो, आराम से देखना।"

पर गुनगुन को सब्र कहां था, वह किताब के चित्र देखने में मग्न हो गई।

□ राजेश उत्साही

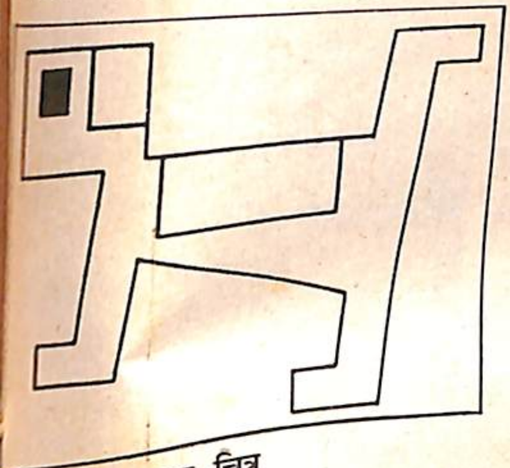
(शिरीन रत्नागर के एक लेख पर आधारित)



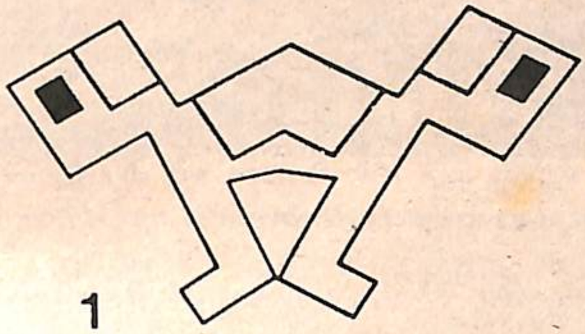




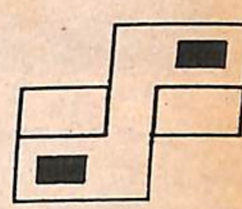
एक छोटा दर्पण या उसका टुकड़ा लो और **मास्टर चित्र** के पास रखकर उसका प्रतिबिंब देखो। प्रतिबिंब और मास्टर चित्र को मिलाकर एक नया चित्र बनता है। यहां दिए अन्य चित्र ऐसे ही बने हैं। दर्पण को थोड़ा आगे-पीछे खिसकाकर, तिरछा करके रखो और तुम भी बनाने की कोशिश करो!



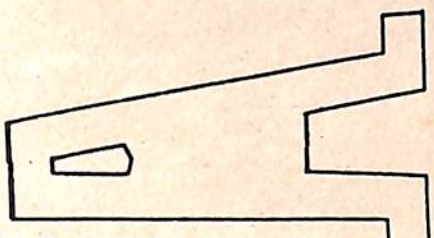
मास्टर चित्र



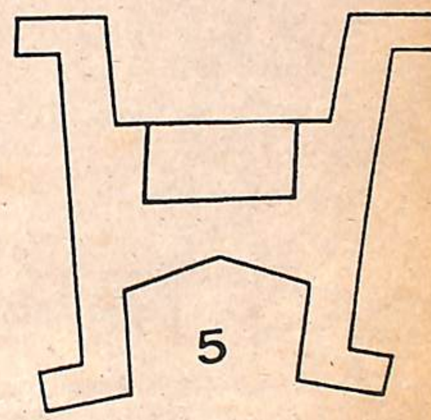
1



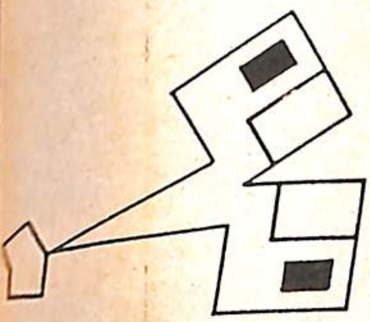
2



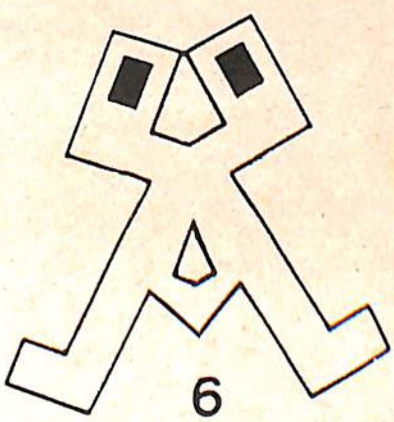
4



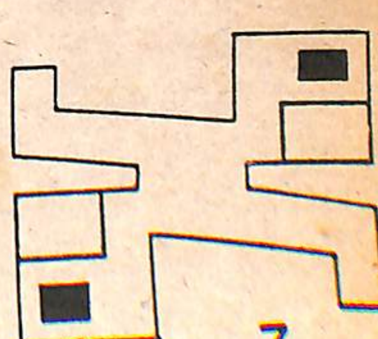
5



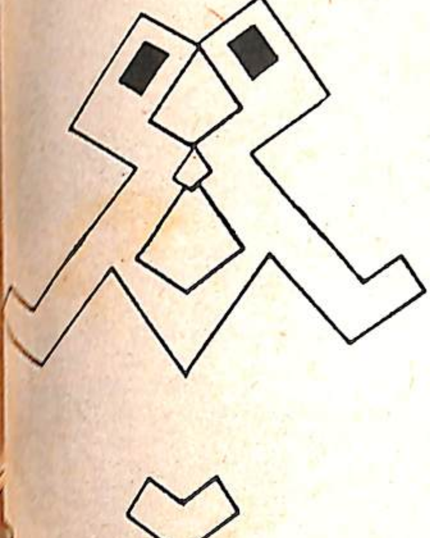
3

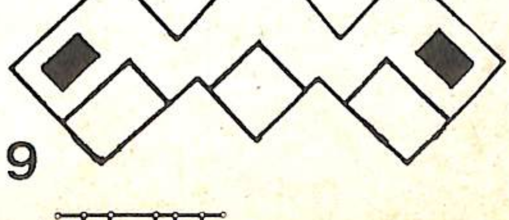


6

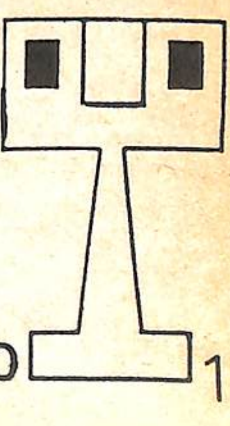


7

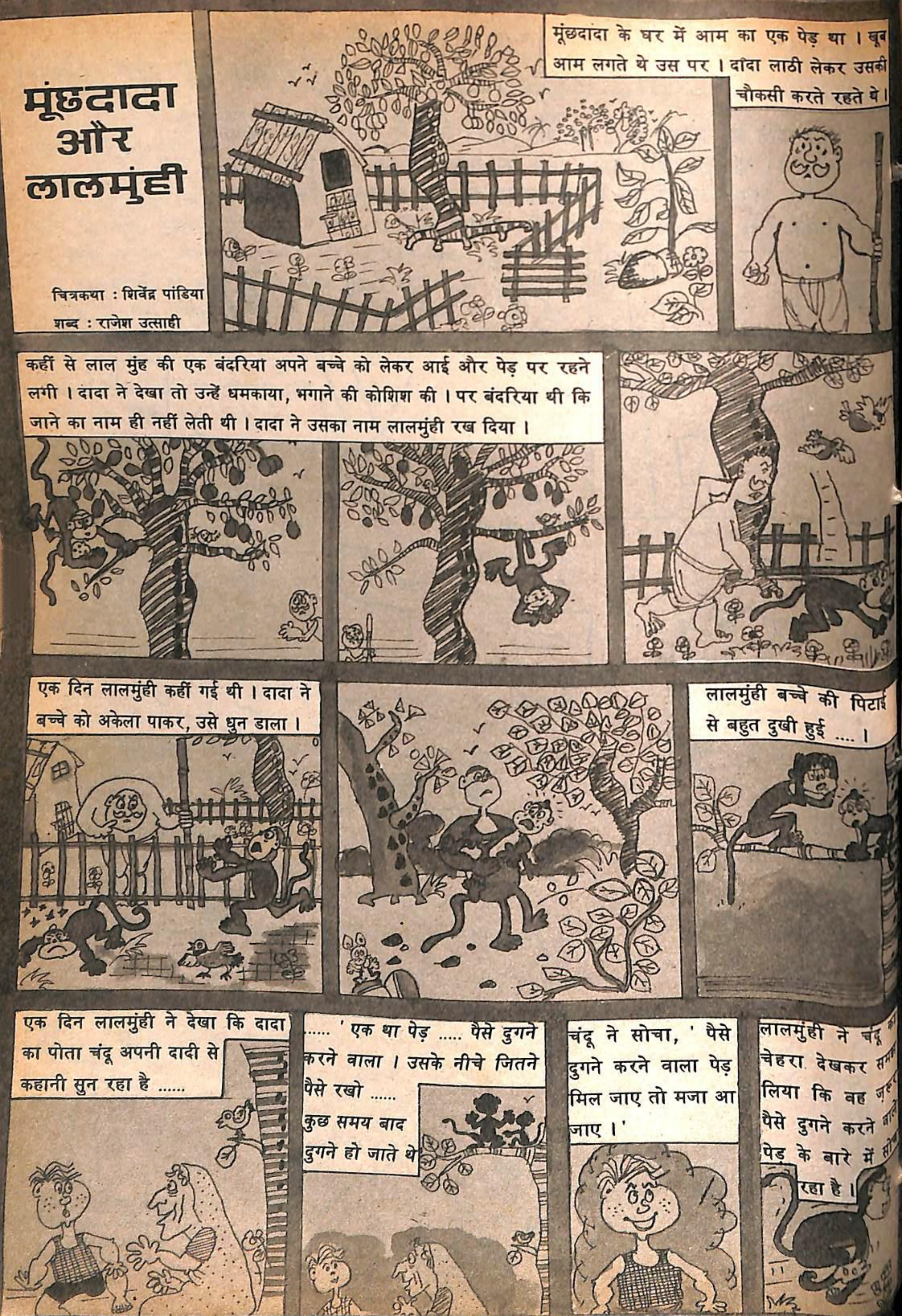


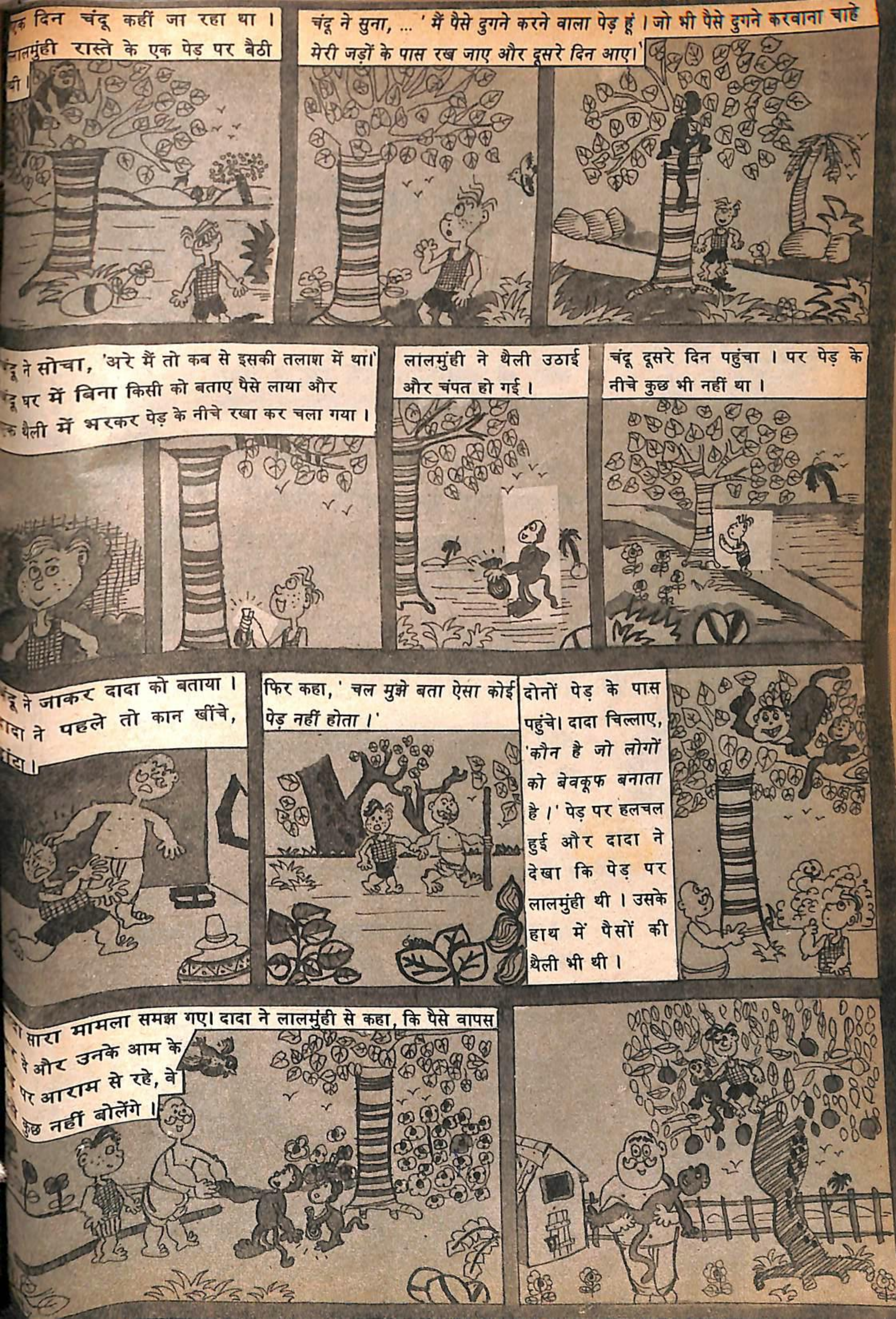


9



10


मूंछदादा और लालमुंही
चित्रकथा : शिवेंद्र पांडिया
शब्द : राजेश उत्साही
मूंछदादा के घर में आम का एक पेड़ था। खूब आम लगते थे उस पर। दादा लाठी लेकर उसकी चौकसी करते रहते थे।
कहीं से लाल मुंह की एक बंदरिया अपने बच्चे को लेकर आई और पेड़ पर रहने लगी। दादा ने देखा तो उन्हें धमकाया, भगाने की कोशिश की। पर बंदरिया थी कि जाने का नाम ही नहीं लेती थी। दादा ने उसका नाम लालमुंही रख दिया।
एक दिन लालमुंही कहीं गई थी। दादा ने बच्चे को अकेला पाकर, उसे धुन डाला।
लालमुंही बच्चे की पिटाई से बहुत दुखी हुई ....।
एक दिन लालमुंही ने देखा कि दादा का पोता चंदू अपनी दादी से कहानी सुन रहा है ......
..... 'एक था पेड़ ..... पैसे दुगने करने वाला। उसके नीचे जितने पैसे रखो ......
कुछ समय बाद दुगने हो जाते थे
चंदू ने सोचा, 'पैसे दुगने करने वाला पेड़ मिल जाए तो मजा आ जाए।'
लालमुंही ने चंदू
चेहरा देखकर
लिया कि वह
पैसे दुगने करने
पेड़ के बारे में
रहा है।



दिन चंदू कहीं जा रहा था । लालमुंही रास्ते के एक पेड़ पर बैठी थी ।
चंदू ने सुना, ... 'मैं पैसे दुगने करने वाला पेड़ हूं । जो भी पैसे दुगने करवाना चाहे मेरी जड़ों के पास रख जाए और दूसरे दिन आए।'
ने सोचा, 'अरे मैं तो कब से इसकी तलाश में था।'
घर में बिना किसी को बताए पैसे लाया और
थैली में भरकर पेड़ के नीचे रखा कर चला गया ।
लालमुंही ने थैली उठाई और चंपत हो गई ।
चंदू दूसरे दिन पहुंचा । पर पेड़ के नीचे कुछ भी नहीं था ।
ने जाकर दादा को बताया ।
ने पहले तो कान खींचे,
फिर कहा, 'चल मुझे बता ऐसा कोई पेड़ नहीं होता ।'
दोनों पेड़ के पास पहुंचे। दादा चिल्लाए, 'कौन है जो लोगों को बेवकूफ बनाता है ।' पेड़ पर हलचल हुई और दादा ने देखा कि पेड़ पर लालमुंही थी । उसके हाथ में पैसों की थैली भी थी ।
सारा मामला समझ गए। दादा ने लालमुंही से कहा, कि पैसे वापस
और उनके आम के
पर आराम से रहे, वे
कुछ नहीं बोलेंगे ।

चींटी से लड़ाई





चींटी से लड़ा शेर, हुई खूब लड़ाई
चींटी के यहां शेर ने की पहले चढ़ाई

चींटी थी अकेली न डरी शेर से मगर
चींटी से शेर को कभी न मानना था डर

बच्चे गए थे घूमने, चींटी थी अकेली
आने को उसके यहां, उस समय थी सहेली

लेकिन तभी किसी ने, द्वार ज़ोर ज़ोर से—
आकर के खटखटाया, उठी चींटी शोर से

देखा तो शेरसिंह खड़े, पूंछ उठाए
पूछा तुरंत, आप यहां किसलिए आए

चींटी थी भली, द्वेष कहीं मन में नहीं था
पर प्रेम शेरसिंह के हृदय में नहीं था

वह दांत दिखा पैने, लगा उसको डराने
चींटी ने लिया समझ, आया दुष्ट सताने

चट बोल दिया हमला, शेर लड़ने लगा अब
चींटी भी लड़ने लगी, द्वार पर बेचारी तब



जब पूंछ मारता था शेर, पांव चलाता
लगता था वह चींटी को अभी खाए ही जाता

पर चींटी काटती थी, चीख मारता था शेर
कहता था अभी कर रहा हूं चींटी तुझे ढेर

पर कुछ भी कर सका न शेर, अंत में थका
आया था जीतने को, जोश सब गया उसका

चूता था पसीना, वह शेर हांफ रहा था
चींटी भी थकी किंतु शेर कांप रहा था

आखिर में शेर हार मान, हाथ जोड़कर
चींटी के यहां से चला, मैदान छोड़कर

चींटी ने काट काट देह, उसकी दुखाई
तब हारे थके शेर को ज्यों आई रुलाई

भागा वह मांग क्षमा, हाथ जोड़कर तभी
चींटी के यहां अब भला, आएगा क्या कभी

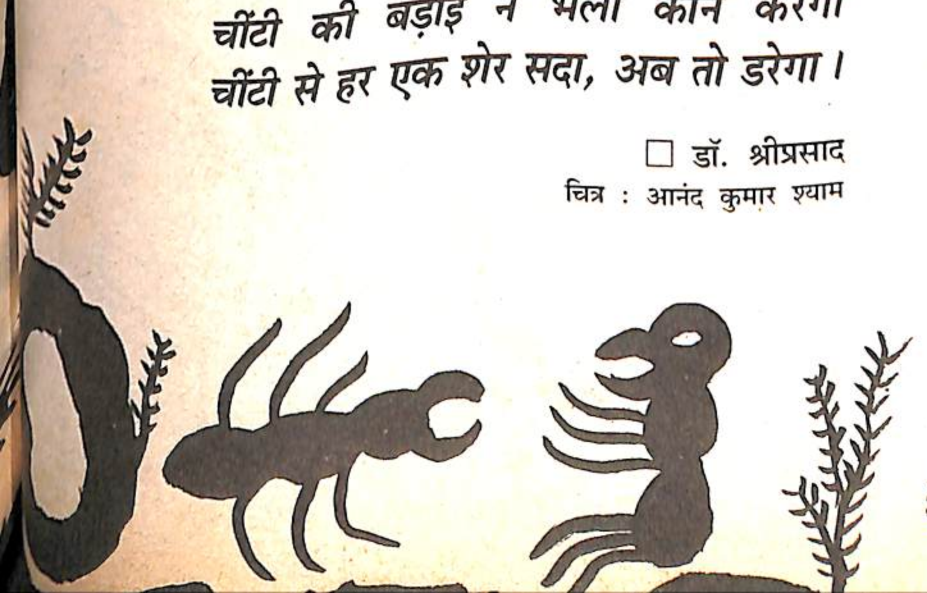
जब शेर गया, उसकी सहेली तभी आई
चींटी ने सभी बात, सहेली को बताई

चींटी थी बहादुर जो शेर से ही लड़ गई
खूंख्वार शेर से जो अकेले ही अड़ गई

चींटी की बड़ाई न भला कौन करेगा
चींटी से हर एक शेर सदा, अब तो डरेगा।

☐ डॉ. श्रीप्रसाद
चित्र : आनंद कुमार श्याम





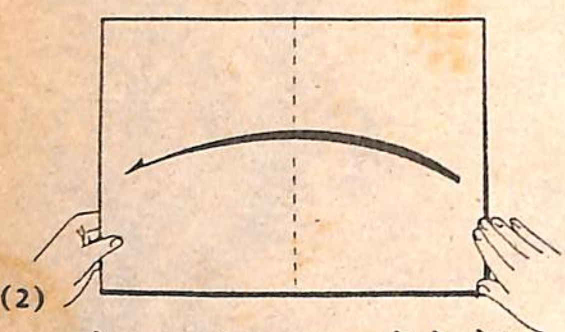
काग़ज़ एक, टोपी अनेक

पिछले अंकों में तुमने काग़ज़ की बहुत अलग-अलग तरह की चीज़ें बनाईं। आओ इस बार एक ही काग़ज़ से कई अलग-अलग तरह की टोपियां बनाते हैं और उसी से नाव भी बन सकती है।

इसके लिए अख़बार का एक पन्ना लो।

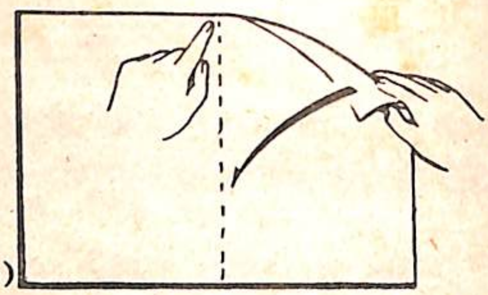
(1)





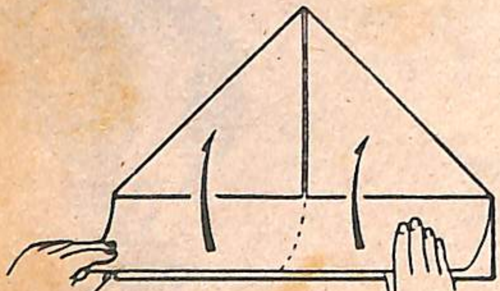
(2)

उसे रुमाल की तरह चार तहों में मोड़ लो। मोड़ों को उंगली फिराकर पक्का कर लो और एक मोड़ को खोल लो।

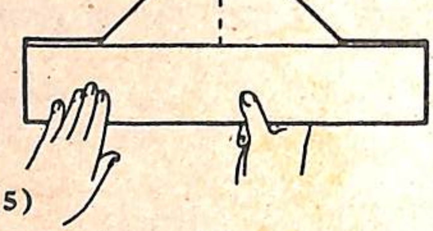


(3)

अब चित्र में दिखाए अनुसार काग़ज़ के ऊपरी सिरों को मोड़कर बीच तक लाओ।



(4) **नीचे** बची हुई दोनों तरफ की पट्टियों को ऊपर मोड़ो।

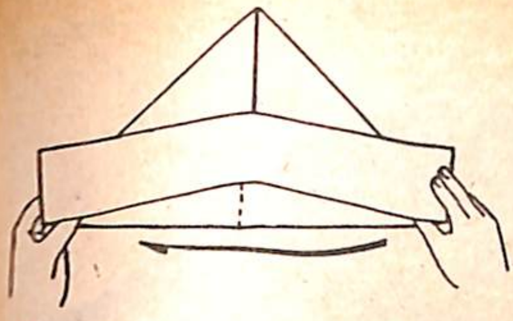


(5)

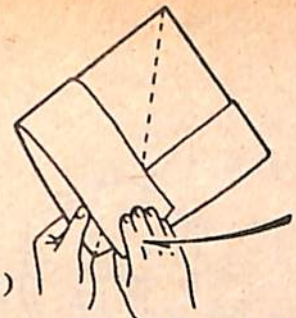
लो यह बन गई कैप्टन की टोपी।



(6)

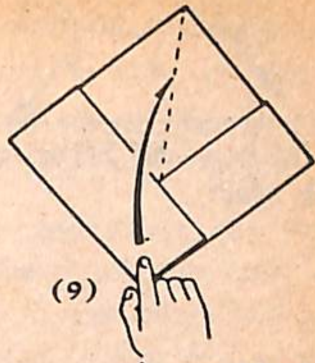


(7)



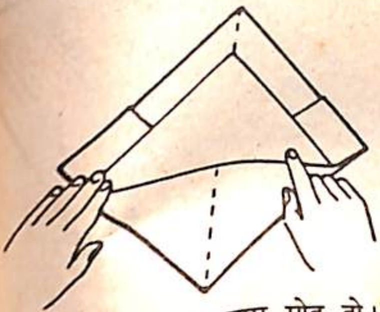
(8)

अब अगर इसके दूर वाले सिरों को पास लाकर मिला दो



(9)

और एक सिरे को....

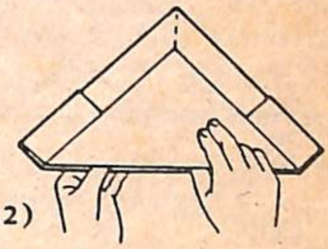


(10) ....इस तरह ऊपर मोड़ दो।



(11)

तो बन जाएगी फ़ायरमैन की टोपी।



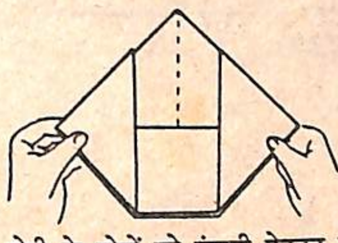
(12)

अब दूसरे सिरे को भी ऊपर की तरफ मोड़ दो।



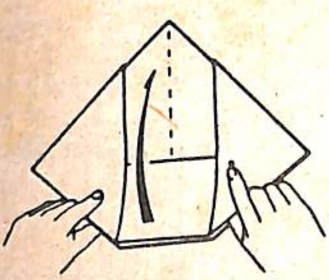
(13)

तो यह बन गई खोजी टोपी।



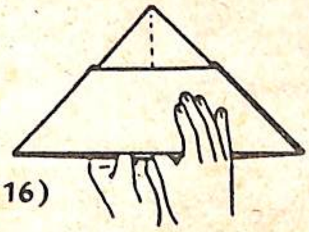
(14)

अब टोपी के मोड़ों को उंगली फेरकर पक्का कर लो।



(15)

फिर इस तरह दोनों निचले सिरों को मोड़कर ऊपर लाओ।

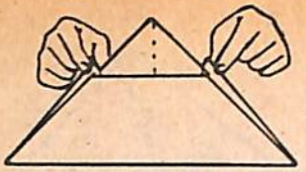


(16)

यह बन गई एक और टोपी।

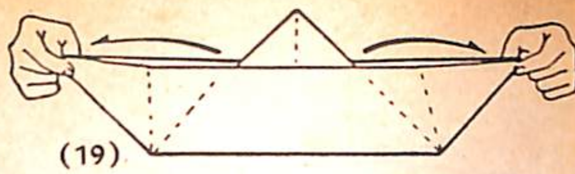


(17)



(18)

अब टोपी के इन दोनों सिरों को पकड़कर ज़ोर से खींचोगे...

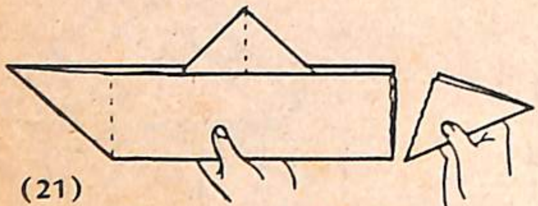


(19)

...... तो बन जाएगी नाव।

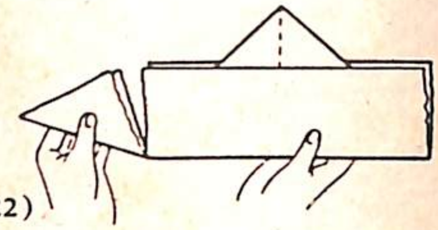


(20)

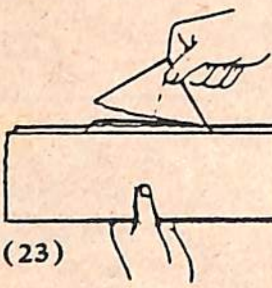


(21)

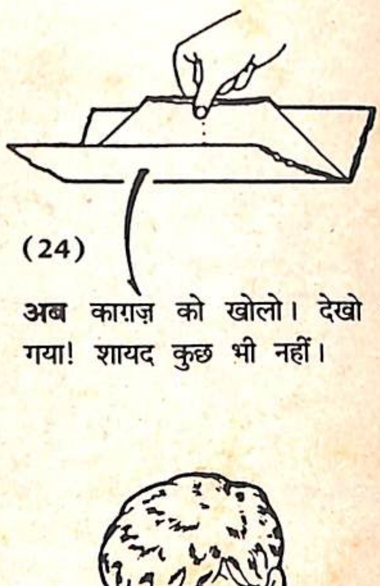
नाव के बाहर निकले तीनों कोनों को फाड़ दो।



(22)

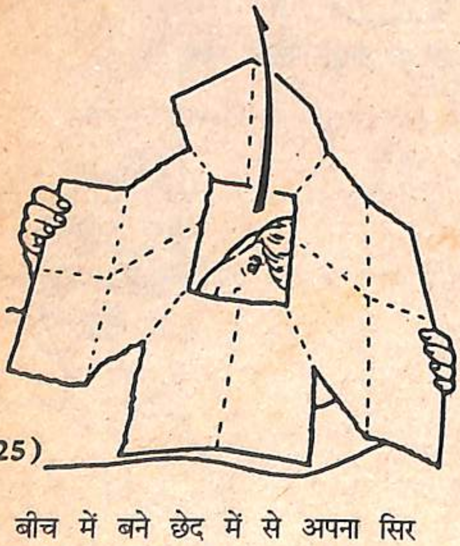


(23)



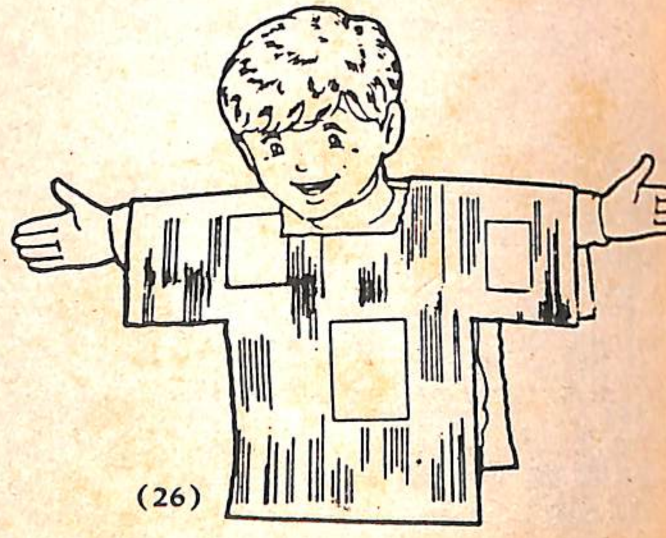
(24)

अब कागज़ को खोलो। देखो क्या बन गया! शायद कुछ भी नहीं।



(25)

पर बीच में बने छेद में से अपना सिर डालकर शर्ट की तरह पहन तो सकते ही हो।



(26)

गौरैया



गौरैया को कौन नहीं जानता? यह पक्षी न केवल मनुष्य के बहुत निकट रहता है बल्कि 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' वाली कहावत का पालन करते हुए मनुष्य के घरों में भी जबरदस्ती घुसकर अपना डेरा जमा लेता है। चाहे बंबई या कलकत्ता जैसा महानगर हो या फिर दो-चार झोपड़ियों वाला नन्हा-सा गांव, शायद ही कोई ऐसा घर हो जहां गौरैया रात न बिताते हों और घोंसला न बनाते हों। इसी कारण अंग्रेजी में इसे 'हाउस स्पैरो' यानि घर में पाई जाने वाली गौरैया कहते हैं। कभी-कभी घरों में घुसकर अकेले-दुकेले सोने के बजाय गौरैया किसी विशेष पेड़ पर सैकड़ों की संख्या में सामूहिक रैन बसेरा (रात में सोने की जगह) बनाते हैं।

तुमने भी गौरैया को अच्छी तरह देखा होगा और तुम्हें यह भी पता होगा कि यह उन पक्षियों में है जिनमें नर और मादा दिखने में भिन्न होते हैं। देश के कई भागों में नर को 'चिड़ा' और मादा को 'चिड़ी' कहते हैं। मादा के शरीर का ऊपरी भाग मटमैला होता है और इस पर कत्थई और काले रंग की धारियां होती हैं। शरीर का निचला भाग भूरे-सफ़ेद रंग का होता है। नर के सिर के ऊपरी भाग, गले और सीने पर काला रंग होता है और यह मादा से बिलकुल भिन्न दिखाई पड़ता है।

गौरैया एक सर्वाहारी पक्षी है। इसका मतलब यह है कि इसे भोजन के रूप में कीड़-मकोड़े, अनाज, फल, फूलों का रस, मनुष्य के भोजन की जूठन आदि सब कुछ चलता है। इनके बड़े-बड़े झुंड जब खेतों में घुस जाते हैं तब फ़सलों को काफ़ी नुकसान पहुंचाते हैं।

गौरैया का प्रजनन काल लगभग पूरा साल ही होता है। यानि ये एक वर्ष में कई बार घोंसला बनाते और बच्चे पैदा करते हैं। ये पक्षी घोंसला कहां बनाते हैं? इस सवाल का जवाब दो शब्दों में दिया जा सकता है—'कहीं भी'। दीवाल में बने छेद, रोशनदान, छत में लटके पंखे, दीवाल पर टंगी तस्वीर, अलमारियां, खाली डिब्बे, आदि। ऐसी कोई जगह नहीं है जहां मौका मिलते ही गौरैया घोंसला न बना दे। तिनके, कूड़ा-करकट, पर आदि सामग्री से इनका घोंसला बनता है। जब ये घरों में घोंसला बनाते हैं, तब अक्सर यह सामग्री फर्श पर गिरती है और उसे बार-बार साफ करना पड़ता है। घोंसला बनाने की जगह को लेकर जब इनमें लड़ाई होती है तब ये चीं-चीं करके इतना शोर मचाते हैं कि काम करना या वहां बैठना मुश्किल हो जाता है। घोंसले में मादा 3 से 5 तक अंडे देती है।

इससे मिलती-जुलती गौरैया की एक और जाति भारत में पाई जाती है। इसे जंगली चिड़ी या तूती कहते हैं। इसका रंगरूप और डीलडौल बहुत कुछ गौरैया के समान ही होता है, किंतु नर के सिर पर काला रंग नहीं होता। इसके पंख पर एक लाल धब्बा और दो सफ़ेद धारियां तथा गले पर पीला रंग होता है। इस कारण इसे अंग्रेज़ी में 'येलो थ्रोटेड स्पॅरो' कहते हैं। मादा तूती के गले पर पीला धब्बा और पंख पर लाल धब्बा नहीं होते।

तूती गांव के आसपास तो रहती है लेकिन गौरैया की तरह मनुष्य को परेशान नहीं करती। इनका भोजन भी अनाज, बीज और कीड़े-मकोड़े हैं।

तूती अपना घोंसला पेड़ के खोखले तने में बनाती हैं। इनकी आवाज़ गौरैया के समान किंतु कुछ अधिक मधुर होती है। ये प्रायः दोपहर का समय घने पेड़ों में बिताती हैं और ऐसे समय पर इनका संगीत लगातार चलता रहता है।

☐ अरविंद गुप्ते

(चित्र सौजन्य : बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी)

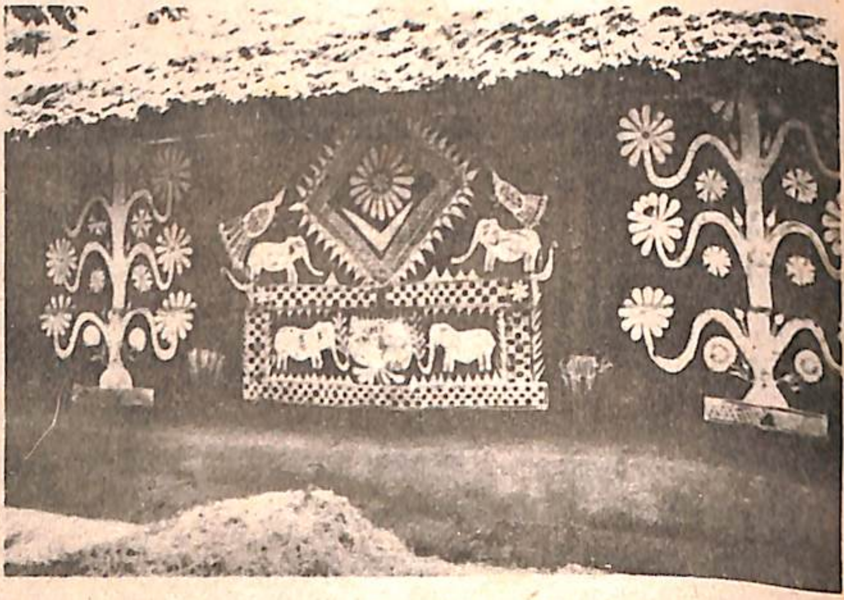
चित्रकला के इतिहास से... 2



पिछले अंक में हमने बात यहां छोड़ी थी कि जंगली जानवरों का शिकार करके पेट भरने वाले शिकारी मानव आख़िर गुफ़ाओं की दीवार पर चित्र क्यों बनाते थे? शायद तुमने इस सवाल पर कुछ सोच-विचार किया होगा।

चित्र तो हम आज भी बनाते हैं, बनते देखते हैं। अलग-अलग तरह के चित्रों के उद्देश्य भी अलग होते हैं। जैसे कुछ चित्र व्यक्तियों के होते हैं, जो शायद इसलिए बनाए जाते हैं कि उन व्यक्तियों की याद बनी रहे। कुछ चित्र धार्मिक उपयोग के लिए बनाए जाते हैं। कुछ चित्र घरों की दीवार को सजाने के लिए बनाए जाते हैं, तो कुछ विचारों और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए। ऐसे कई और भी उद्देश्य हो सकते हैं।

अब हज़ारों साल पहले शिकारी मानव चित्र क्यों बनाते थे, इसके बारे में ठीक-ठीक तो कुछ कहा नहीं जा सकता। हां, चित्रों को देखकर अनुमान अवश्य लगा सकते हैं।





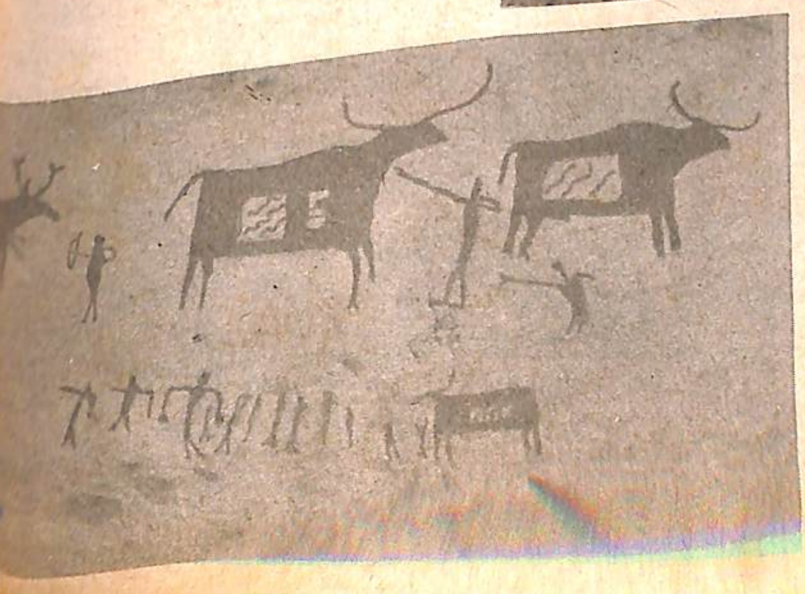
भैंसे के इस चित्र को देखो। इसके शरीर पर तीन घाव दिखाए गए हैं, जो शायद तीर या भाले से बने हैं। ऐसे चित्र बनाने के पीछे क्या मंशा रही होगी? शायद यह कि चित्र में जानवर को घायल कर दें, तो वास्तव में शिकार करने पर वह जानवर आसानी से घायल हो जाएगा। यह अर्थ भी निकाल सकते हैं कि शायद शिकारी मानव यह मानते थे कि चित्रों पर जादू-टोना करके वे जानवरों पर काबू पा सकते हैं।

यह चित्र देखो। इसमें एक आदमी किसी सींगदार जानवर का मुखौटा पहने है , उसकी पीठ और पूंछ घोड़े जैसी है और वह नाच रहा है। यह चित्र मानव और जानवर के घनिष्ठ संबंध को दर्शाता है और यह चित्र हमारे लिए इतना अपरिचित भी नहीं है। आज भी त्यौहारों तथा परंपरागत उत्सवों में बंदर, बैल, शेर आदि के मुखौटे लगाकर नृत्य किए जाते हैं।









हम यह कह सकते हैं कि वास्तव में चित्रकला लोगों के दैनिक जीवन और मान्यताओं से गहरे रूप में जुड़ी थी। वे केवल अपनी गुफाओं की शोभा बढ़ाने या मनोरंजन के लिए चित्र नहीं बनाते थे।

□ सी.एन. सुब्रह्मण्यम

दोस्त

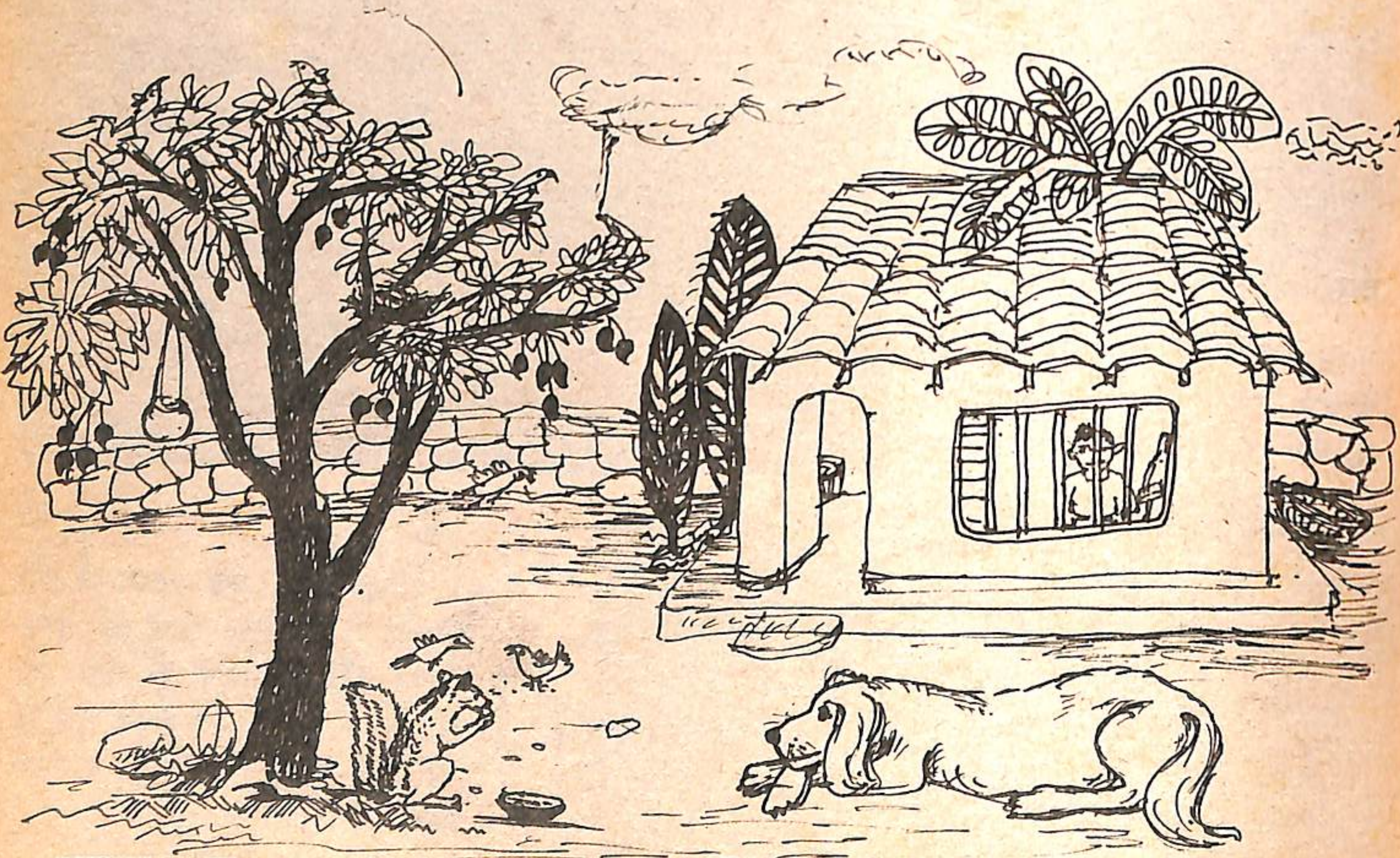
मधुप के घर के आंगन में एक आम का पेड़ था। उस पर एक छोटा सा घोंसला था। उस घोंसले में रहती थी नन्ही-सी प्यारी-प्यारी एक गिलहरी—''चिंकी''। उसकी चमकीली आंखें थीं और झबरीली पूंछ।

अपनी पूंछ उठाए वह पेड़ की टहनियों पर इधर से उधर दौड़ा करती थी। सवेरे-सवेरे उसकी सुरीली 'चिंक-चिंक' और रसभरी 'टिर्र ऽऽऽऽ' की आवाज़ बड़ी भली लगती थी।

मधुप ने एक कुत्ता पाल रखा था—''श्वानू''। श्वानू बड़ा समझदार था। मधुप ने उसे बहुत कुछ सिखा रखा था। वह केवल शाकाहारी चीज़ें खाता था।

आंगन में फुदकती चिड़ियों और गिलहरी को न पकड़ने का पाठ मधुप ने उसे बहुत अच्छे ढंग से पढ़ाया था।

मधुप को पक्षियों और छोटे जानवरों से बहुत लगाव था। वह रोज चिंकी के लिये रोटी और फलों के छोटे-छोटे टुकड़े करके डाल देता था। चिंकी बेधड़क होकर आंगन में फुदकती थी और श्वानू के सामने ही बैठकर अपने नन्हे पंजों में रोटी दबाकर कुतर-कुतर कर खाती थी। श्वानू उसकी इस हरकत को बड़े ध्यान से देखता था।





श्वानू न तो कभी चिंकी की रोटी या फल बीनकर खाता था और न ही उसे पकड़ने की कोशिश करता था। हां, कभी शैतानी के 'मूड' में होता था, तो उसे भौंककर डरा देता था और चिंकी उसे ठेंगा सा दिखाती हुई पेड़ पर चढ़ जाती थी।

एक दिन श्वानू सड़क पर घूम रहा था, तो उसने कई कुत्तों को किसी छोटे जीव के पीछे दौड़ते देखा। एक-दो कुत्ते सामने से भी आ गए थे और वह बीच में घिर गया था।

श्वानू ने सोचा—'कहीं वह चिंकी तो नहीं!' और कस के उस ओर दौड़ लगा दी। उसका अंदाज़ा सही निकला था। एक कुत्ता चिंकी को पकड़ने ही वाला था कि श्वानू ने उसे ज़ोर से धक्का दे दिया। चिंकी जल्दी से श्वानू के पैर पर चढ़ गई और कस के लिपट गई।

सभी कुत्ते श्वानू पर गुर्राने लगे, लेकिन उसके तगड़े शरीर को देखकर उससे भिड़ने की किसी में हिम्मत नहीं हुई। श्वानू ने खूब ज़ोर से भौंककर उनको जो डांट लगाई, तो सबके सब भागते नज़र आए।

श्वानू ने चिंकी के मुंह में मुंह लगाकर सूंघा, जैसे कह रहा हो कि अब तुम सुरक्षित हो। फिर श्वानू ने घर आकर चिंकी को पैर पर से उतार दिया और वह झट से पेड़ पर चढ़ गई।

अब तो चिंकी और श्वानू पक्के दोस्त बन गए।

खेल-खेल में चिंकी श्वानू की पीठ पर सवारी भी करने लगी थी!

☐ रावेंद्र कुमार 'रवि'
सभी चित्र : शोभा घारे

नजानू बना संगीतकार!

[खेलने का मैदान। मैदान के आसपास, मंच के पिछले भाग में कुछ घर। वैसे घर न भी बने हों तो तुम मान तो सकते ही हो। मंच के बाएं कोने पर कुछ लड़के खड़े हुए गीत गा रहे हैं।]

सारे लड़के : देखो-देखो नजानू का हाल देखो
कैसे पड़ती है उल्टी हर चाल देखो
देखो-देखो-----------

काम कितना भी मुश्किल, वो ज़िद पर अड़े
जैसे अक्ल पर उसकी हों पत्थर पड़े
न तो सोचे, न समझे, न सीखे कभी
आगा-पीछा भी उसको न दीखे कभी
चाहे जितना हो टेढ़ा सवाल देखो
देखो-देखो नजानू का हाल देखो।
देखो-देखो----------



[गीत ख़त्म होते न होते मंच के एक कोने से टुनिया और मुनिया आती हैं। गीत गाते लड़कों में से मोटू उनकी ओर देखता है।]

मोटू : अरे, देखो! लड़कियां आ रही हैं।
जल्दबाज़ : चलो, उन्हें छकाएं!
सब : हां-हां। चलो-चलो।

[सब लड़के उनकी ओर भागते हैं।]

गुलदस्ता : बूढ़ी अम्मां कहां चलीं?
टुनिया : कौन है बूढ़ा? गुलदस्ता भैया, सबसे बड़े तो आप हैं।
गुलदस्ता : अरे! मैंने तुम्हें कब बुढ़िया कहा? क्यों?
जानू : और क्या! हम तो बूढ़ी अम्मा का खेल खेल रहे हैं।

[जानू कमर झुका कर, लकड़ी टेक कर चलने का अभिनय करने लगता है।]

मुनिया : खेलना है तो खेलो लेकिन हमारा रास्ता तो छोड़ो।
जल्दबाज़ : तुम लोग भी तो खेलने ही जा रही हो न! आज हम लोगों के ही साथ खेलो।
टुनिया : हम लड़कों के साथ नहीं खेलते।
सारे लड़के : क्यों ऽऽऽ!
मुनिया : तुम लोग हमें परेशान करते हो।
छोटू : परेशान नहीं करेंगे तो खेलोगी हमारे साथ?
टुनिया : ठीक है। लेकिन लड़ोगे तो नहीं?
गुलदस्ता : हां-हां, लड़ेंगे भी नहीं।
सुस्तराम : मैं तो खेलूंगा भी नहीं। मुझे नींद आ रही है।
मोटू : ओ सुस्तराम! लड़कों के साथ रहना है कि नहीं?

मुनिया : यह तुम लोग बार-बार लड़का-लड़की करते रहते हो? ऐसी बातें करोगे तो हम लोग चले जाएंगे।

गुलदस्ता : अच्छा-अच्छा। बहस बंद। चलो, खेलते हैं। बुढ़िया अम्मां वाला ही खेल।

जानू : बुढ़िया कौन बनेगा?........ सुस्तराम।

सुस्तराम : मैं नहीं बनता बुढ़िया! तुम लोग जान-बूझ कर मुझे परेशान करते हो।

मोटू : अच्छा, मैं बनता हूं बुढ़िया। सब तैयार हो जाओ।

[मोटू दौड़कर एक ओर जाता है और वहां से लकड़ी टेकते हुए वापस आता है।]

सब : बुढ़िया अम्मां! कहां चलीं?

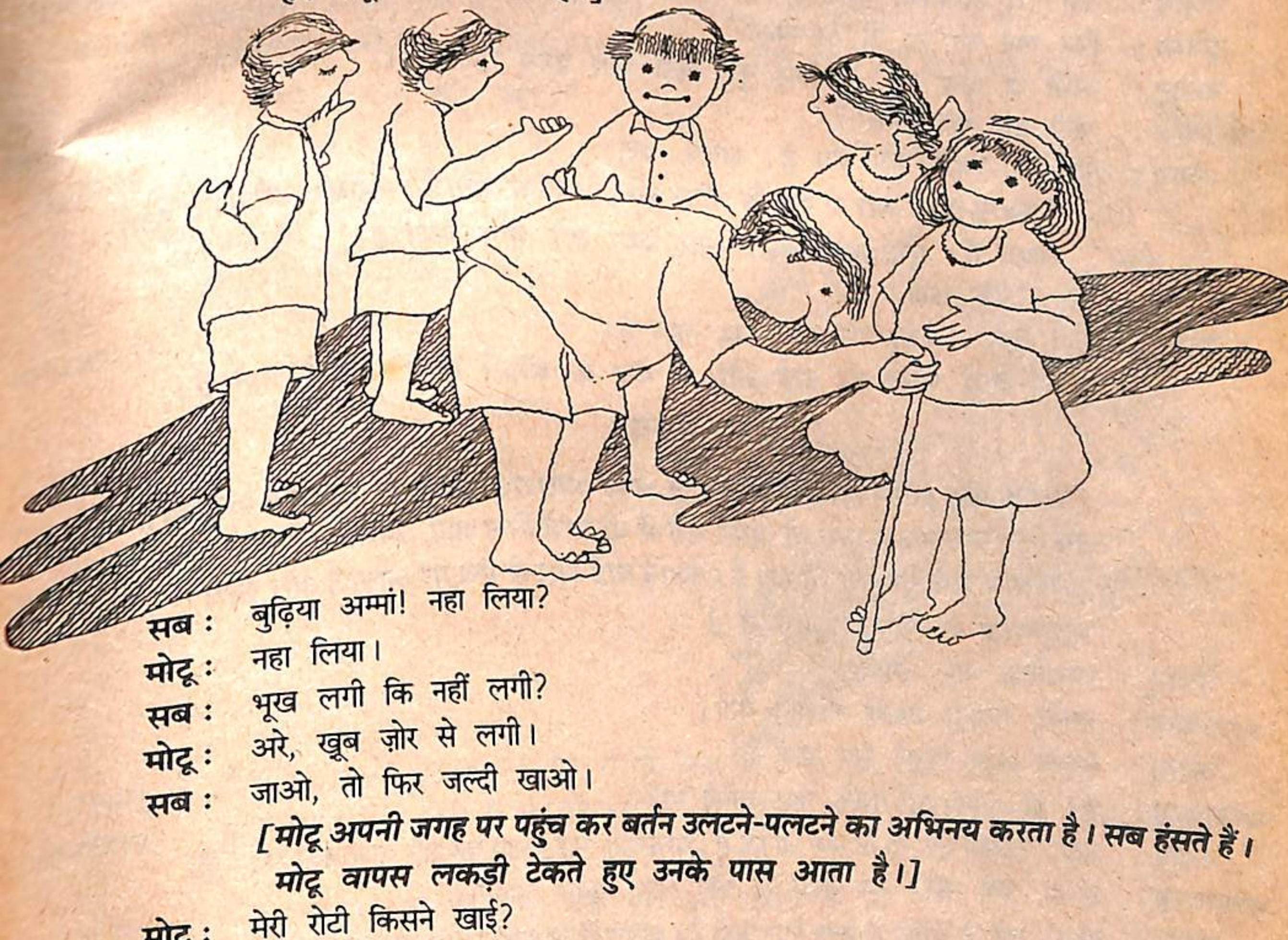
मोटू : नदी नहाने।

सब : नदी नहा कर क्या करोगी?

मोटू : रोटी खाऊंगी।

सब : जाओ-जाओ। जल्दी जाओ।

[मोटू मंच के बाएं हिस्से से अंदर चला जाता है। सब मोटू की पहली वाली जगह पर जाते हैं और खाना खाने का अभिनय करने लगते हैं। फिर हाथ-मुंह पोंछकर वापस खड़े हो जाते हैं। मोटू वापस आता है।]



सब : बुढ़िया अम्मां! नहा लिया?

मोटू : नहा लिया।

सब : भूख लगी कि नहीं लगी?

मोटू : अरे, खूब ज़ोर से लगी।

सब : जाओ, तो फिर जल्दी खाओ।

[मोटू अपनी जगह पर पहुंच कर बर्तन उलटने-पलटने का अभिनय करता है। सब हंसते हैं। मोटू वापस लकड़ी टेकते हुए उनके पास आता है।]

मोटू : मेरी रोटी किसने खाई?

सब : कुत्ते ने।

मोटू : कुत्ता मेरे साथ गया था।

सब : गैया ने।

मोटू : गैया तो नदी किनारे घास चर रही थी।

सब : चिड़िया ने।

मोटू : चिड़िया तो नदी किनारे पेड़ पर बैठी थी।

सब : गधे ने।

मोटू : गधा तो नदी किनारे धोबी के साथ था।

सब : हमने-हमने!

[मोटू उनकी ओर लपकता है। सब यहां-वहां भागते हैं। सुस्तराम धीरे-धीरे चलता है और पकड़ में आ जाता है।]

सुस्तराम : छोड़ो-छोड़ो। मैंने पहले ही कहा था...

मोटू : ए—रोना बंद करो और अपना दाम दो।

[मंच के दाएं कोने से नजानू आता है।]

सुस्तराम : देखो, नजानू आ रहा है। ओ, नजानू!

[नजानू पास आ जाता है।]

मुनिया : नजानू, हमारे साथ खेलोगे?

सुस्तराम : हां-हां। खेलेगा। नई घोड़ी, नया दाम!

नजानू : नहीं, सुस्तराम! मैंने खेलकूद में समय बिताना बंद कर दिया है।

गुलदस्ता : हैं! यानी तुम अभी तक कविताएं लिख रहे हो?

नजानू : नहीं। मैं आजकल कविताएं भी नहीं लिखता।

टुनिया : फिर क्या कर रहे हो आजकल?

नजानू : अभी तो कुछ नहीं... लेकिन कुछ बड़ा काम करना चाहता हूं।

जल्दबाज़ : यानी तुम नहीं खेलोगे?

नजानू : मेरे पास समय ज़रा कम है। अच्छा, चलूं।

[नजानू दूसरी ओर से मंच के भीतर की ओर चला जाता है। सारे बच्चे उसे जाता हुआ देखते हैं। सुस्तराम सबकी नज़र बचा कर भाग जाता है।]

मोटू : ए, सुस्तराम कहां गया?

गुलदस्ता : भाग गया... चलो, उसे पकड़ कर लाते हैं।

[सारे बच्चे भाग कर दाईं ओर से मंच के भीतरी हिस्से में चले जाते हैं।]

(दूसरा दृश्य)

[मंच के पीछे दाहिने हिस्से में बाजाबाज़ अपने आसपास रखे बाजों को साफ़ कर रहा है। तुम लोग जब नाटक करो तो अपने घरों में जो बाजें मिल जाएं, उनसे काम चला सकते हो। बाजाबाज़ कुछ गुनगुना भी रहा है। नजानू बाईं ओर से मंच पर आता है और सीधे बाजाबाज़ के पास पहुंचता है।]

नजानू : बाजाबाज़ भाई, नमस्ते!

बाजाबाज़ : नमस्ते, नजानू! आओ-आओ। बैठो।

नजानू : आपके पास कितने सारे बाजे हैं!

बाजाबाज़ : हं? हां। तुम इन सबके नाम जानते हो?

नजानू : नहीं... लेकिन एक-दो के नाम जानता हूं। बाजाबाज़ भाई, आप यह सारे बाजे बजा सकते हैं?

बाजाबाज़ : हां-हां, क्यों नहीं? तुम इनमें से कोई बाजा सुनना चाहोगे?

नजानू : हां-हां! मुझे तो संगीत में बहुत दिलचस्पी है। बल्कि मैं तो कोई न कोई बाजा बजाना सीखना भी चाहता हूं!

बाजाबाज़ : तुम सचमुच सीखना चाहते हो?

नजानू : हां! मैं चाहता हूं कि बड़ा होकर आपके जैसा ही नाम कमाऊं।

बाजाबाज़ : हां-हां, ज़रूर। तुम अगर थोड़ी भी मेहनत करो तो मुझसे भी ज़्यादा नाम कमा सकते हो। वैसे, तुम कौन-सा बाजा बजाना सीखना चाहोगे?

नजानू : किस बाजे को बजाना, सीखना सबसे आसान है?

बाजाबाज़ : आसान? (**हंसता है**), जिस बाजे को बजाने में तुम्हारा मन लगे, वही सबसे आसान हो जाता है।

नजानू : हां, लेकिन फिर भी...

बाजाबाज़ : अच्छा, लो, तुम यह इकतारा बजाओ। यह शायद सबसे आसान है क्योंकि इसमें एक ही तार है...

नजानू : हां-हां! मुझे भी मालूम है... लाओ, मैं इसे बजाता हूं।

[बाजाबाज़ नजानू को इकतारा देता है। नजानू उसे बजाने की कोशिश करता है, फिर थोड़ी देर बाद झुंझलाकर नीचे रख देता है।]

बाजाबाज : अरे, क्या हुआ?

नजानू : इस इकतारे की आवाज़ तो बहुत धीमी है। मुझे कोई दूसरा, ज़ोर से बजनेवाला बाजा दीजिए न!

बाजाबाज़ : अच्छा... लो, तुम यह वायलिन बजा कर देखो।

[नजानू को वायलिन देता है। नजानू कुछ देर उसे भी बजा कर देखता है और फिर झुंझलाकर वापस दे देता है।]

नजानू : कोई बहुत ज़ोर से बजनेवाला बाजा नहीं है?

बाजाबाज़ : है क्यों नहीं? बिगुल है, बीन है...

नजानू : बस-बस! बिगुल ठीक है। लाइए, उसे ही बजाने की कोशिश करता हूं।

[बाजाबाज़ उसे बिगुल दे देता है। नजानू उसे बार-बार, खूब ज़ोर से बजाता है।]

बाजाबाज़: अरे, नजानू! ज़रा धीरे-धीरे, भाई!

नजानू: अरे वाह! धीरे क्यों? इतना अच्छा तो बाजा है... देखो, कितनी ज़ोर से बजता है!

[फिर से बजाता है।]

बाजाबाज़: हां-हां! यह काफ़ी ज़ोर से बजता है।... अगर तुम्हें बिगुल ही पसंद है तो ठीक है, तुम इसे ही बजाना सीख लो।



नजानू : इसे सीखने की क्या ज़रूरत है? मैं तो बिना सीखे ही इसे बजा सकता हूं।

बाजाबाज़ : नहीं, नजानू! बिना सीखे तो कोई भी काम नहीं हो सकता। लाओ, मुझे दो, मैं तुम्हें बजाना सिखाता हूं।

नजानू : अब इससे भी ज़्यादा अच्छा कोई क्या बजा सकता है?

बाजाबाज़ : नहीं, नजानू! तुम समझने की कोशिश करो...।

नजानू : मैं समझता हूं, सब कुछ समझता हूं। लो, सुनो!

[खूब ज़ोर से बिगुल बजाता है।]

बाजाबाज़ : तुम ख़ाली आवाज़ें निकाल रहे हो। बिगुल बजा नहीं रहे।

नजानू : लो! बजा नहीं रहा हूं? मैं तो इतना अच्छा बजा रहा हूं। कितने ज़ोर से!

बाजाबाज़ : ओह, बुद्धू कहीं के! बिगुल बजाने का मतलब यह नहीं है कि उससे ऊंची आवाज़ निकले, बल्कि उसे बजाने का मतलब है कि उससे सुंदर संगीत पैदा हो!

नजानू : मेरे ख़्याल में तो मैं बहुत सुंदर संगीत पैदा कर रहा हूं!

बाजाबाज़ : सुर, नजानू, सुर! जैसे तुम बजा रहे हो वह बिल्कुल सुरीला नहीं है।... मैं देख रहा हूं कि तुम्हें संगीत की ज़रा भी समझ नहीं है।

नजानू : संगीत की समझ मुझे नहीं है कि आपको? आप मुझसे जलते हैं, इसलिये ऐसा कह रहे हैं। आप चाहते हैं कि लोग सिर्फ़ आपका ही संगीत सुनें और आपकी ही तारीफ़ करें!

बाजाबाज़ : ऐसा कुछ भी नहीं है। अगर तुम्हारा ख़्याल है कि तुम बहुत अच्छा बिगुल बजाते हो तो इसे ले जाओ और इसको जितना जी चाहे बजाओ। लोग अगर तुम्हारी तारीफ़ करें तो इससे मुझे क्या?

नजानू : मैं तो बिगुल ज़रूर बजाऊंगा!

[वह ज़ोर-ज़ोर से बिगुल बजाता है।]

दृश्य तीन

[वही जगह, जहां सारे बच्चे पहले दृश्य में थे। वे अब कोई दूसरा खेल खेल रहे हैं, जैसे गुलाम-डंडा, या कुछ और। उन्हें अचानक बिगुल की आवाज़ सुनाई देती है। मोटू घबरा कर गिर पड़ता है।]



छोटू : अरे, मोटू! क्या हुआ?

मोटू : बाप रे! यह कौन-से जानवर की आवाज़ है?

[फिर से, बिगुल की आवाज़ और तेज़ सुनाई देती है।]

गुलदस्ता : उफ़! कितनी भयानक आवाज़ है!

[नजानू मंच के भीतरी भाग से, दाईं ओर से निकलकर बिगुल बजाता हुआ आता है। सारे बच्चे उसकी ओर भागते हैं।]

जल्दबाज़ : यह कैसा शोर है!

नजानू : यह शोर नहीं, संगीत है। देखते नहीं, मैं बिगुल बजा रहा हूं!

[फिर से बजाता है।]

जल्दबाज़ : बंद करो, फ़ौरन बंद करो! तुम्हारा संगीत सुनकर तो कानों में दर्द होने लगता है।

नजानू : यह इसलिए कि तुम्हें अभी मेरा संगीत सुनने की आदत नहीं पड़ी है। जब आदत हो जाएगी तो कानों में दर्द नहीं होगा।

[फिर से बिगुल बजाता है।]

सुस्तराम : हम तुम्हारा संगीत सुनने की आदत नहीं डालना चाहते! सुना तुमने?

[नजानू फिर भी बिगुल बजाता रहता है।]

मोटू : बिगुल बजाना बंद करो!

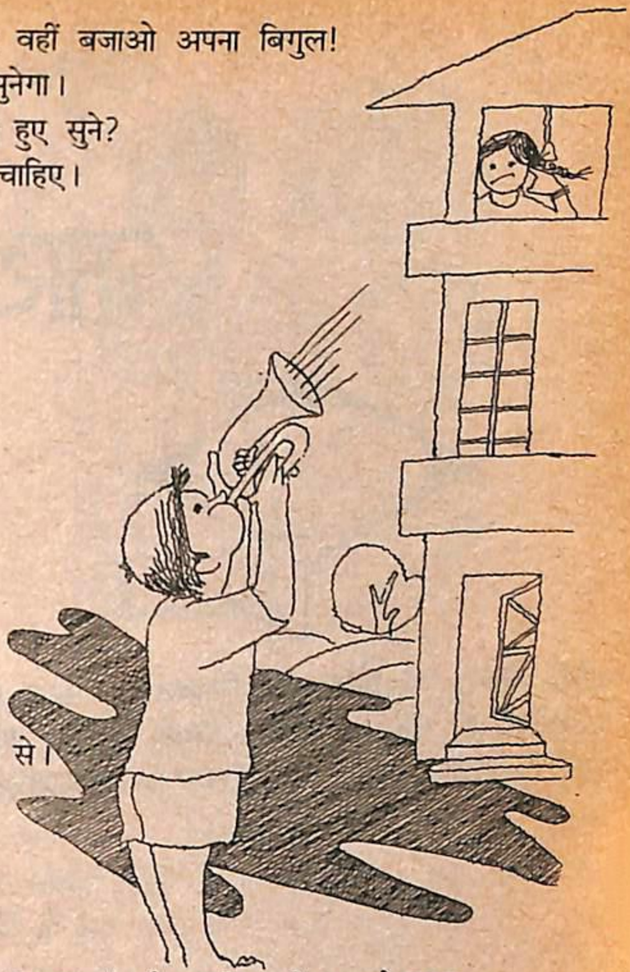
[नजानू का बिगुल छीनने लगता है।]

छोटू : अपने इस रद्दी बिगुल को लेकर भागो यहां से।

नजानू : अरे-अरे! ज़रा ठहरो। मुझे यह तो बताओ कि मैं कहां जाऊं?

लदस्ता : किसी मैदान में, या फिर किसी पहाड़ पर और वहीं बजाओ अपना बिगुल!
नजानू : लेकिन वहां तो मेरा बिगुल बजाना कोई नहीं सुनेगा।
जानू : क्या यह ज़रूरी है कि कोई तुम्हें बिगुल बजाते हुए सुने?
नजानू : ज़रूर! आख़िर मुझे तारीफ़ करने वाले भी तो चाहिए।
ल्दबाज़: तो सड़क पर जाकर बजाओ। वहां से आने-जाने वालों और पड़ोसियों को तुम्हारा बिगुल खूब सुनाई देगा। हो सकता है कोई तारीफ़ भी कर दे!
नजानू: ठीक है!

[नजानू सड़क पर जाकर बिगुल बजाना शुरू कर देता है। सब उसकी ओर देखते हैं। दुनिया अपने घर से बाहर निकलती है।]



दुनिया: यह कौन पागल है... ओ नजानू! यह क्या शोर मचा रखा है यह?

[फिर से बजाता है।]

नजानू : यह शोर नहीं है, दुनिया! ज़रा फिर से सुनो!
दुनिया : मुझे नहीं सुननी तुम्हारी पों-पों। चलो, भागो यहां से।
नजानू : नहीं भागता! और, मैं बिगुल भी बजाऊंगा।
दुनिया : नहीं भागोगे?
नजानू : नहीं!
दुनिया : ठहरो, मैं अपने पापा को बुलाती हूं।

[दुनिया वापस घर में जाती है। नजानू भाग कर आगे जाता है और दूसरे घर के सामने खड़ा होकर बिगुल बजाने लगता है। मुनिया अपने कुत्ते को लेकर निकलती है। किसी बच्चे से कुत्ते का अभिनय करवा सकते हैं।]

दुनिया : कौन है?... अरे, नजानू! तुम यह क्या ऊधम कर रहे हो?
नजानू : तुम इसे ऊधम कहती हो? यह संगीत है, मुनिया, संगीत! लो, सुनो!
मुनिया : अरे-अरे! फिर मत बजाओ, नहीं तो मेरा कुत्ता...

[कुत्ता मुनिया से ज़ंजीर छुड़ा कर नजानू की तरफ लपकता है। नजानू भागता है। मुनिया दौड़कर कुत्ते की ज़ंजीर पकड़ लेती है। नजानू मंच के बीचों-बीच, एकदम सामने आकर खड़ा हो जाता है।]

नजानू : मेरा संगीत किसी की समझ में नहीं आता। असल में अभी लोगों की समझ मेरे संगीत के लायक़ नहीं हुई है। जब ये लोग लायक़ हो जाएंगे तो खुद ही मुझसे बिगुल बजाने को कहेंगे। मगर तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। तब क्या मैं ऐसे गंवारों के लिए बिगुल बजाऊंगा?

[नजानू फिर बिगुल मुंह से लगा कर फूंकता है लेकिन आवाज़ नहीं निकलती। सब अपनी पहलेवाली जगह पर, फिर से गाना शुरू करते हैं।]

सब : देखो-देखो नजानू का हाल देखो
कैसे पड़ती है उल्टी हर चाल देखो
देखो-देखो...

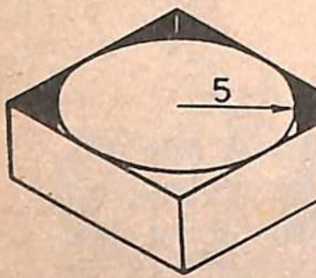
निकोलाई नोसोव की कहानी का नाट्य रूपांतर, द्वारा कविता सुरेश।

सभी चित्र : धनंजय



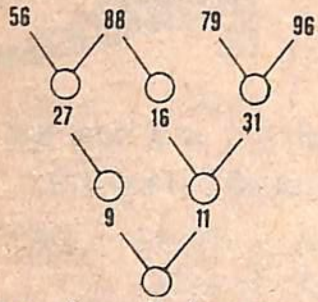
माथापच्ची

(1)



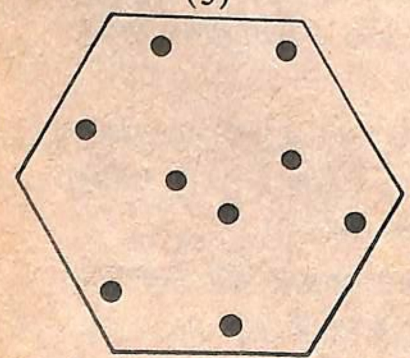
चीनी मिट्टी की गोल प्लेटें जिनका अर्धव्यास 5 सेंटीमीटर है, गत्ते के चौकोर डिब्बों में पैक की जानी हैं। बताओ डिब्बे किस क्षेत्रफल के बनाए जाएं?

(2)



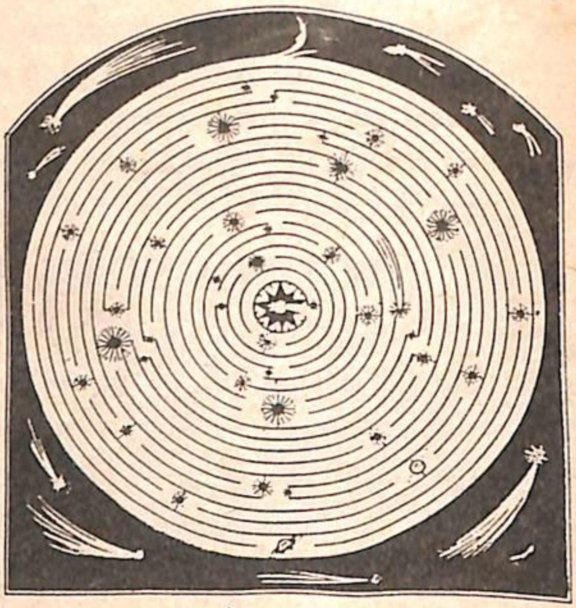
ऊपर दी अन्य संख्याओं के आधार पर बताओ कि ख़ाली गोले में कौन-सी संख्या आएगी?

(3)



इस षटकोण में नौ बिंदु हैं। प्रत्येक बिंदु के लिए एक खाना बनाना है। पर कुछ शर्तों के साथ। पहली शर्त यह है कि बराबर लंबाई की केवल नौ सरल रेखाएं ही खींच सकते हो। दूसरी शर्त यह है कि बनने वाले खानों का आकार समान होना चाहिए।

(4)



यह एक काल्पनिक सौर मंडल है। सूर्य तक पहुंचने का रास्ता खोजो!

(5)



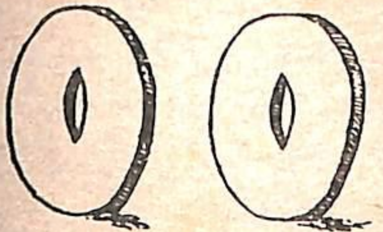
24 तीलियों से बने 9 खानों में एक-एक सिक्का रखा है। प्रत्येक खड़े या आड़े कालम में रखे सिक्कों के मूल्य का योग 6 है। बीच वाले एक खाने में रखे सिक्के पर एक तीली भी रखी है। अब चुनौती यह है कि इस जमावट में फेर-बदल करनी है। पर ध्यान रहे कि फेर-बदल करने से जमावट का आकार नहीं बदले, आड़े या खड़े कालम में रखे सिक्कों के मूल्य का योग नहीं बदले और किसी भी सिक्के को तीली के साथ नहीं हटाया जा सकता। यह सवाल वास्तव में 'समझ की फेर' का है। देखें तुम समझ सकते हो या नहीं?

(6)

घर में पांच भाई-बहन थे। पांचों को साल के लिए काम सौंपे गए थे। काम थे घर की ई, आंगन की सफ़ाई, पानी की टंकी की ई, बगीचे की देखभाल करना और सप्ताह दिन बाज़ार-हाट से सामान लाना।

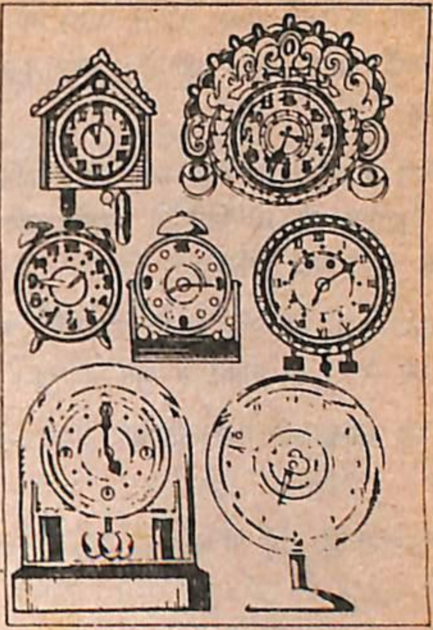
घर की सफ़ाई का ज़िम्मा बड़े भैया के पास वे एक दिन छोड़कर यह काम करते। आंगन सफ़ाई दो दिन छोड़कर, तीसरे दिन बड़ी दीदी थीं। टंकी की सफ़ाई हर चौथे दिन मंझले भैया । मेरा काम होता हर पांचवें दिन किराने की न से ज़रूरत का सामान लाना। हमारी छोटी जिसे हम प्यार से दादी कहते, हर छठवें दिन -सब्ज़ी लेने हाट जाती। तुम सोच रहे होगे, यह आत्मकथा क्यों बता रहा हूं? चलो बंद दी कथा। पर अब यह बताओ कि एक वरी से हम सब दिए गए क्रम के अनुसार कर रहे थे, तो पहले तीन महीनों यानी, वरी, फ़रवरी तथा मार्च में कितने दिन ऐसे थे जब पांचों को अपना-अपना काम करना था? यह भी बताओ कि इन महीनों में कितने दिन थे जब किसी को भी काम नहीं करना हां फरवरी 28 दिन की थी।

(7)



बढ़ई को, जो अपने काम में बहुत उस्ताद था, ड़ी के दो गोल टुकड़े दिए गए (जो चित्र में दिखाए उससे कहा गया कि इन टुकड़ों से एक बड़ा बोर्ड बनाना है, जिसे टेबिल पर फिट किया जा यह भी चेतावनी दी गई कि लकड़ी का एक भी बेकार नहीं जाना चाहिए। लकड़ी का पूरा-पूरा हो। बढ़ई बेचारा बहुत दिनों तक माथापच्ची रहा, आख़िरकार उसे एक तरीका सूझ ही गया। रीका क्या था? कागज़ के दो ऐसे गोले काटकर भी माथापच्ची कर देखो।

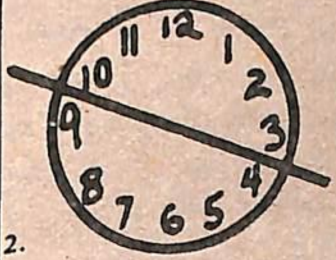
(8)



पिछले अंक में तुमने घड़ियों पर कुछ पहेलियां हल की थीं। इस अंक में एक और पहेली। ऊपर छह घड़ियां दर्शाई गई हैं। अपने एक ख़ास गुण के आधार पर पांच घड़ियां एक समूह में रखी जा सकती हैं, लेकिन एक नहीं। वह कौन सी घड़ी है ज़रा ढूंढो तो।

माथापच्ची : उत्तर फरवरी अंक के

1. 143 स्थितियां।



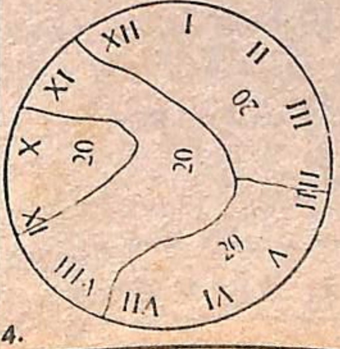


2.

5. 48 महीने।

7. दस बजने में दस मिनट पर।

8. एक घंटा केवल। क्योंकि अलार्म तो रात के दस बजे ही बज जाएगा।



4.

9.

4
4
4
44
444
———
500

क्यों... क्यों... 7

मुनिया के बापू सुबह उठे तो कहने लगे, "आज तो मेरी बाईं आंख फड़क रही है। ज़रूर कुछ अशुभ होने वाला है।"

फिर वे मुंह-हाथ धोकर आए और उन्होंने आवाज़ लगाई, "मुनिया की मां चाय तो लाओ। क्या बात है अब तक चाय नहीं बनी।"

मुनिया की मां रसोई से ही चिल्लाई, "चाय कैसे बनेगी! घर में न तो शक्कर है और न गुड़।"

"तो कल क्यों नहीं बताया।" बापू भी नाराज हो उठे।

"बताया तो था, पर आपको याद रहे तब न!" मां बोली।

"हां-हां, मुझे क्यों याद रहने लगा। याद रखने का ठेका तो तुमने ही ले रखा है।" बापू तैश में आ गए।

"आज सुबह से क्या लड़ने के लिए ही बैठे थे?" मां बोलीं।

"मुझे मालूम था, आज ज़रूर झगड़ा होगा। मेरी बाईं आंख फड़क रही थी।" बापू और मां के बीच बोलचाल बंद हो गई और बापू बिना खाना खाए ही अपने काम पर चले गए।

मुनिया यह सारा हाल देख-सुन रही थी। उसने मां से पूछा, "क्यों मां सचमुच आंख फड़कने से झगड़ा होता है?"

मां भी गुस्से में थीं, बोलीं,"मुझे नहीं पता।"

तुम्हारा क्या ख़्याल है? आंख ही नहीं शरीर के कई अन्य अंगों के फड़कने पर भी शुभ-अशुभ का संकेत माना जाता है। सच्चाई क्या है? क्या सचमुच अंगों के फड़कने में कोई संकेत होता है? इस बार खोजबीन के लिए यही सवाल है।

तुम्हारे जवाब हमें **15 जून, 1991 तक** मिल जाने चाहिए। लिफ़ाफ़े, पोस्टकार्ड आदि पर '**क्यों... क्यों... 7**' लिखना मत भूलना।

क्यों... क्यों-2 : पाठकों के उत्तर

क्यों... क्यों... 2 के जवाब में 23 पत्र प्राप्त हुए हैं। सवाल था कि, '**शाम को अचार क्यों नहीं निकालते हैं?**'

प्राप्त उत्तरों को हमने दो भागों में बांटा है।

1. *अगर अचार शाम को निकाला जाए तो ख़राब हो सकता है। क्योंकि शाम को अंधेरा और ठंडक हो जाने से हवा में ऐसे छोटे-छोटे जीवाणु निकल आते हैं, जो नंगी आंखों से दिखाई नहीं देते। ये जीवाणु अचार के बरतन में पहुंचकर अचार को ख़राब कर देते हैं या सड़ा देते हैं।*

अचार ख़राब होने की संभावना कुछ पत्रों में यह कहते हुए लिखी गई है कि शाम होने पर बाहरी वातावरण ठंडा रहता है और बाहर की अपेक्षा अचार के बरतन में तापमान अधिक होता है। अचार के लिए बरतन खोलने पर उसमें नमी हो सकती है जिससे अचार में फफूंद लग सकती है।

ये जवाब 16 पत्रों में थे।

2. *शाम को अचार खाने से अचार हज़म नहीं होता। खांसी हो सकती है। शरीर को नुकसान पहुंच सकता है।*

यह जवाब शेष 7 पत्रों में लिखे गए थे।

इनमें से कौन-सा कारण सही है यह कहना मुश्किल है। हमारा सुझाव है कि पहले कारण को परखने के लिए तुम स्वयं ही कोई प्रयोग सोचो और करो।

जिन पाठकों ने उत्तर भेजे उनके नाम हैं—
संगीता सोनी, रेहटी। आनंद गुप्त, मऊ, बांदा। नीतू सचान, कन्नौज। बालकराम बरई, बीकापुर, संजय शुक्ल, शाहजहांपुर। **सभी उ.प्र.**।

कमलेश अग्रवाल, पालड़ी, जयपुर। ओम प्रकाश सैनी, धवली, जयपुर। राजेश कुमार। चेतनराम जाट, जयपुर। विजेंद्र अग्रवाल, अजमेर। **सभी राजस्थान**।

अवध किशोर पांडे। मुकेश पाठक, पालमूं। राजू कुमार सिंह, कसाप, भोजपुर। **सभी बिहार**।

श्याम सुंदर कोसे, खोरपा, दुर्ग। सीताराम शुक्ला, कोठिया, कटनी। मनोज नामदेव, सतना। राधेश्याम यादव, बेलसोंडा, रायपुर। राहुल गर्ग, ईसागढ़, गुना। आशीष दलाल, खरगोन। राजीव तिवारी, होशंगाबाद। विलोम माने, नीमच। अपर्णा कनोड़िया, लश्कर, ग्वालियर। **सभी म.प्र.**।



बिटिया चली स्कूल

बिटिया चली है स्कूल, भैया बस्ता उठाए
बिटिया है बगिया का फूल, मैया हंस-हंस के गाए!

बिटिया बनेगी हुसियार
करेगी घर-भर में उजाला
बिटिया करेगी बड़ा नाम
पियेगी दूध, भर-भर के प्याला

बिटिया, काटेगी दुःख के बबूल
अब्बा खुशियां मनाएं
बिटिया है बगिया का फूल
अम्मा हंस-हंस के गाए!

बिटिया - खेलेगी हर खेल
बढ़ेगी देखो आगे ही आगे
बिटिया करेगी ऐसे काम
फिरेंगे दुःख भागे ही भागे

बिटिया दौड़े तो उड़ती है धूल
सखियां छेड़ें, चिढ़ायें
बिटिया है बगिया का फूल
मैया हंस-हंस के गाए!

□ रमेश दवे
चित्र : नर्मदा प्रसाद



पिछले अंकों में तुमने विद्युत से संबंधित कुछ प्रयोग किए थे। विद्युत से चलने वाली मोटर तो तुमने देखी ही होगी। वह मोटर जो कुंए से पानी खींचने से लेकर कल-कारखानों में छोटी तथा बड़ी-बड़ी मशीनों को चलाने का काम करती है।

विद्युत मोटर कैसे काम करती है? आओ उसका एक सरल मॉडल बनाकर समझने का प्रयास करें।

चकमक के पुराने पाठकों को याद होगा कि अक्टूबर, 1987 के अंक में भी विद्युत मोटर बनाने का तरीका प्रकाशित किया था। लेकिन यहां जो विधि बता रहे हैं वह ज़्यादा आसान है और इसमें कम चीज़ों की ज़रूरत होती है।

मोटर बनाने के लिए एक चालू टार्चसेल, दो स्टोवपिन, चकती चुंबक, 22 गेज का इनेमल चढ़ा तांबे का तार, रेगमाल तथा रबरबैंड एकत्रित करो।

सामने के पृष्ठ पर दिया चित्र देखो। ऊपर की तरफ पुराने तरीके से बनी मोटर का चित्र है और नीचे नए तरीके से।

सबसे पहले इनेमल चढ़े तार को सेल पर दस से पंद्रह बार लपेटकर कुंडली बनाओ। कुंडली को सेल से निकाल लो। उसके दोनों छोरों को थोड़ा लंबा करके बाहर निकाल लो। कुंडली के छल्ले फैलें नहीं इसलिए छोरों सहित उन्हें धागे से बांध दो।

अब स्टोवपिनों को पिन की तरफ से थोड़ा-सा 'एल' आकार में मोड़कर चित्र में दिखाए अनुसार सेल के दोनों और रबर बैंड की सहायता से बांध दो। यह ध्यान रहे कि स्टोव पिन सेल के उन बिंदुओं के संपर्क में ज़रूर हों, जिनसे विद्युत प्रवाहित होती है। मुड़ा हुआ हिस्सा सेल के लिए स्टैंड का काम करेगा।

अब कुंडली को चित्र में दिखाए तरीके से स्टोवपिनों के बीच लटकाओ। स्टोवपिन में ऊपर की तरफ एक छेद होता है। कुंडली के छोरों का जो हिस्सा स्टोवपिनों के संपर्क में आ रहा हो, उसके ऊपर की तरफ का इनेमल रेगमाल से रगड़कर साफ़ कर दो।

चित्र में दिखाई स्थिति के अनुसार अपने चुंबक को सेल पर बीचों-बीच रबरबैंड से कस दो। अब कुंडली को उंगली से हल्का-सा धक्का दो। कुंडली घूमने लगेगी।

कुंडली क्यों घूमती है?

यह समझने के लिए हमें विद्युत और चुंबक के एक गुण को ध्यान में रखना होगा। किसी भी चुंबक का एक चुंबकीय प्रभाव क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र की दिशा भी निश्चित होती है। इसी प्रकार जब किसी तार में विद्युतधारा बहती है तो उसके कारण भी एक विद्युत चुंबकीय क्षेत्र बन जाता है। इसकी भी निश्चित दिशा होती है।

जब हम कुंडली को धक्का देकर घुमाते हैं तो उसके सिरों का वह भाग, जिसका इनेमल साफ़ किया गया है, स्टोवपिन के संपर्क में आता है। पिन में विद्युत धारा बह रही होती है। विद्युतधारा कुंडली में से होती हुई दूसरी स्टोवपिन के संपर्क में आती है और परिपथ पूरा हो जाता है। जब विद्युतधारा कुंडली में से प्रवाहित होती है तो उसका भी एक चुंबकीय क्षेत्र बनता है। हमने अपनी मोटर में तो चुंबक लगा ही रखा है। उसका अपना चुंबकीय क्षेत्र भी है।

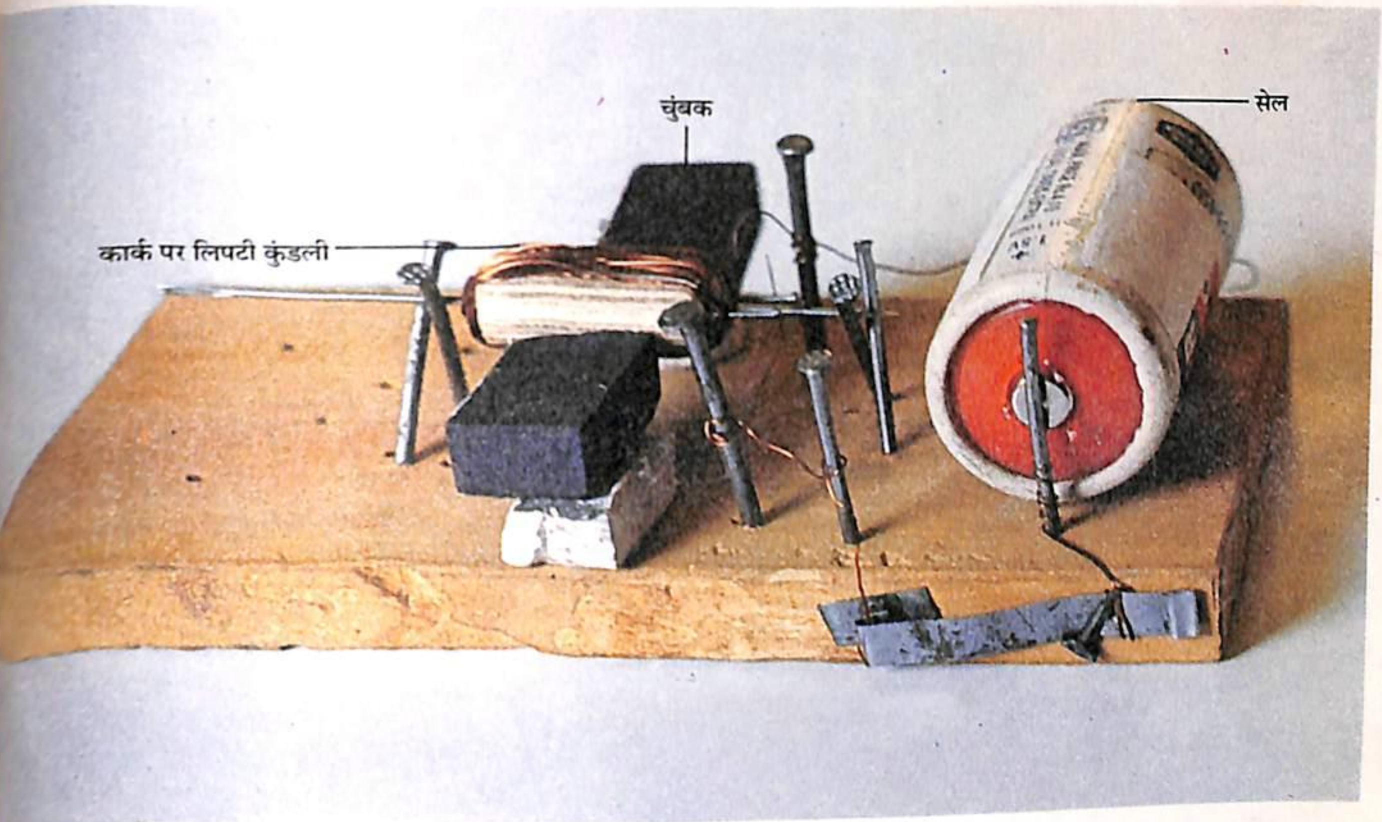
अब इन दोनों चुंबकीय क्षेत्रों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है, इस असर के कारण दोनों क्षेत्र एक-दूसरे के समांतर होने की कोशिश करते हैं। चुंबक तो स्थिर होता है, इसलिए वह घूम नहीं सकता। लेकिन कुंडली घूम जाती है। कुंडली के घूमने से उसमें विद्युतधारा बहना बंद हो जाती है, क्योंकि कुंडली के सिरों का वह भाग पिन के संपर्क में आता है जहां इनेमल है।

किंतु जब एक बार कुंडली घूमती है, तो अपनी झोंक में थोड़ी ज़्यादा घूम जाती है और फिर से बिना इनेमल वाला हिस्सा पिन को छू जाता है। फिर विद्युत धारा बहती है, फिर चुंबकीय क्षेत्र बनता है, कुंडली फिर घूमती है। इस तरह कुंडली लगातार घूमती रहती है।

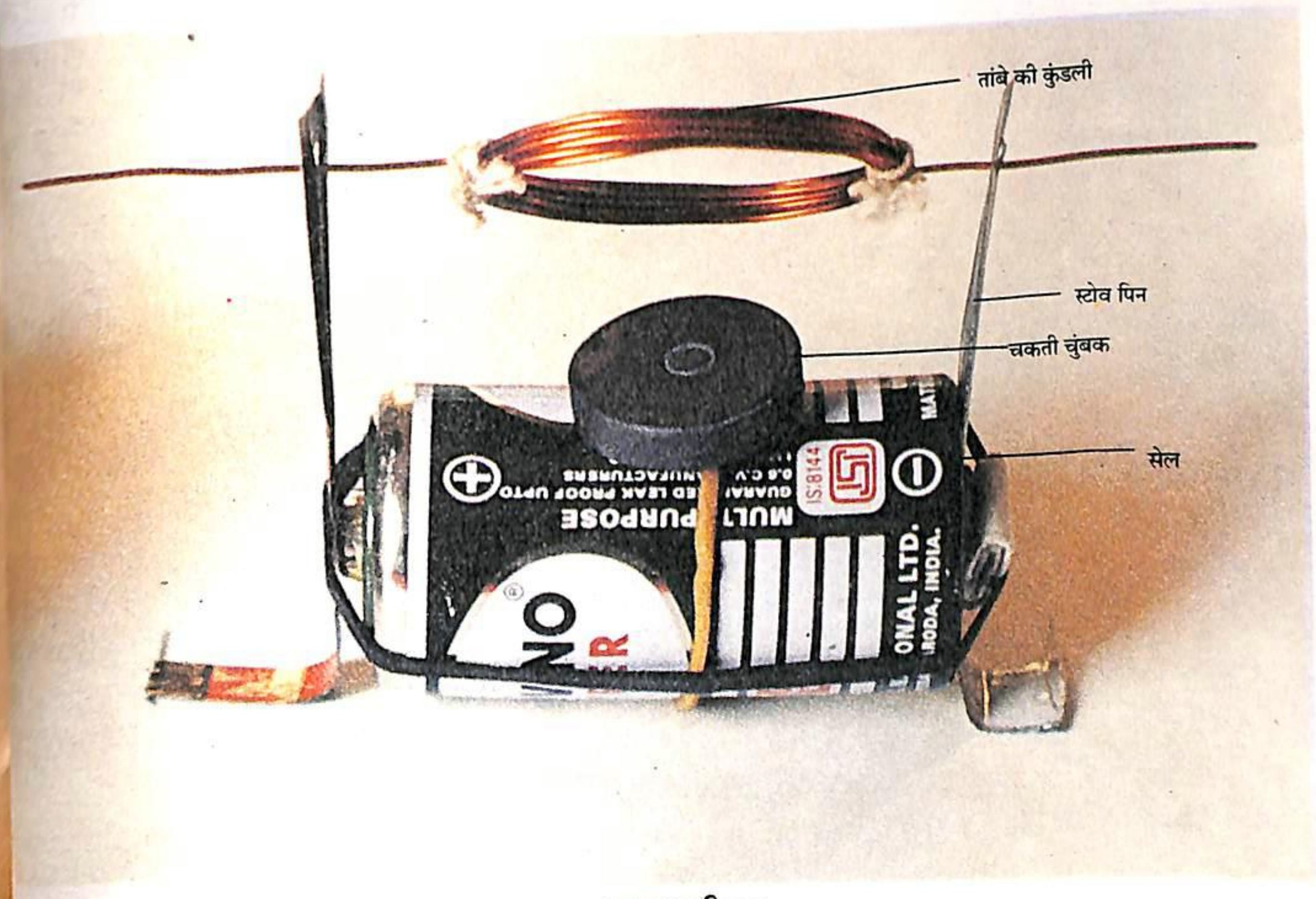
एक बात स्पष्ट करना ज़रूरी है। हमने कुंडली के सिरों का इनेमल एक ही तरफ से साफ़ किया था। क्यों? यदि ऐसा न करते तो विद्युतधारा लगातार बहती रहती। इससे कुंडली लगातार गोल-गोल घूमने की बजाय झूले की तरह आगे-पीछे होती रहती। इसलिए हर बार विद्युतधारा बहना और बंद होना ज़रूरी है।

मूल रूप से मोटर का यही सिद्धांत होता है।

विद्युत मोटर



पुराना तरीका



नया तरीका

पंजीयन क्रमांक 50309/85 के अंतर्गत भारत के समाचार पत्रों के रजिस्टार द्वारा पंजीकृत।
डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/91



रेक्स डी रोजारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 से प्रकाशित